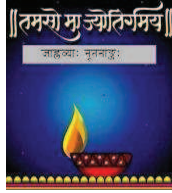




## JAHNAVI SANSKRIT E-JOURNAL

संयुक्ताङ्केऽस्मिन् (21-22) भवतां सर्वेषां मङ्गलाभिनन्दनम्।



[www.jahnavisanskritejournal.in](http://www.jahnavisanskritejournal.in)

सारस्वत-निकेतनाख्या संस्कृतसेवासरणिः पूज्यगुरुपादेः कीर्तिशेषैः राष्ट्राधीशपुरस्कृतेः देवानन्दहावरीः प्रातस्मरणीयैः स्वनामधन्यैः राष्ट्राधीशपुरस्कृतेः तुलानन्दाऽपरनामनारायणह्लावरीश्च उद्घाटिता विद्यावाचस्पत्युपाधिभाक्-सदानन्दज्ञानुगता एषा सरणिः विपिनज्ञाद्वारा संस्कृतानुरागिणां सहयोगैः विविधेषु रूपेषु संस्कृतप्रचार-प्रसाराय सन्नद्धा वर्तते तेषु रूपेषु एवायं प्रबन्धः जाह्नवी संस्कृत ई जर्नल नाम्ना इह जगति प्रथितः।

### संयुक्ताङ्कस्यास्य कार्यसम्पादकाः

मुख्यसम्पादकः	विद्यावाचस्पत्याचार्यसदानन्दज्ञा
पुनर्वीक्षकाः	डा. गीताशुक्ला-डा.जानकीशरण-विद्वान् सुमन आचार्य-डा. अनिलप्रतापगिरि-डा. मधुकेश्वरभट्ट-डा. मनोजश्रीमाल- डा. प्रज्ञापाण्डेय-श्लेषाशचिन्- सुश्रीसाधनाप्रभृतयः।
सम्पादकौ	डा.राधावल्लभशर्मा, विपिनकुमारज्ञा च
सहसम्पादकः	नारायणदत्तमिश्रः
सम्पादनसहायके	डा. सुमनदीक्षित, डा. हीरालालदाशश्च
प्रकाशकः	विपिनकुमारज्ञा
प्रकाशनसहायकः	डा.राधावल्लभशर्मा
लोकार्पणप्रतिनिधिः	डा.सरिताश्रीवास्तव
तकनीकी-सहायकौ	रित्जेटेक्नोलोजीज, बंगलुरु

## JAHNAVI-A First Electronic Peer-reviewed Quarterly Refreed Sanskrit Triveni (Sanskrit, Hindi & English) Journal.

### विषयानुक्रमणिका

I	प्रस्फुटम्	
1	सम्पादकीयम्	विद्यावाचस्पत्याचार्यसदानन्दज्ञा
2	प्रकाशकीयम्	विपिनकुमारज्ञा
II.	साहित्यानुरागः	
1	सन्तान-योग :- ज्योतिषीय एवं वैज्ञानिक विश्लेषण	मनोज श्रीमाल
2	पूर्वत्रासिद्धं सूत्रविचारः	वैद्यसुब्रह्मण्यः
3	भवभूतेः मालतीमाधवे अलङ्कारध्वनेः परिशीलनम्	प्रणतिपण्डा
4	श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित साम्यवाद की वर्तमान में उपयोगिता	पुष्पा अवस्थी & सुमन पाण्डेय
5	कलौ धर्मशास्त्रम्	कृष्णाशर्मा
6	व्यपदेशिवदकेरिम्न परिभाषाविचारः	मधुकेश्वरभट्टः
7	वेदान्त दर्शनः एक परिचय	ललित किशोर शर्मा
8	गृहवास्तुप्रकरणे सोपानप्रक्रियाया मीमांसा	हरिनारायणधरद्विवेदी
9	कुमाउनी भाषा और संस्कृत :- अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या	भुवनचन्द्र मठपाल
10	उपनिषद्दर्शनान्तर्निहितानि शैक्षिकतत्त्वानि	सुशान्तहोता
11	अथर्ववेदीय सप्तर्षिपदगत अनेकार्थ :- विशद विश्लेषण	गीता शुक्ला
12	उपनिषत्सु पर्यावरणस्य स्वरूपं संरक्षणोपायाश्च	हीरालालदाशः
13	साङ्ख्यदर्शनान्तर्गतानि शैक्षिकतत्त्वानि	सागरिकानन्द
14	सांख्यदर्शनानुसारं कर्मदेहयोः परिचयविमर्शः	देवाशीषपाणिग्रही
III	शृङ्खलाप्रभागः	
1	कालिदासकविता विजयते	राधावल्लभशर्मा
2	रङ्गकर्मणो गुरुः वशिष्ठः परब्रह्मणि विलीनः	नौनिहालगौतमः
3	मोबाईल ( एन्ड्रायड् एप् ) मध्ये व्याकरणशास्त्रम्	देवदत्तसरोदे
4	भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (ग्रन्थसमीक्षा)	राधावल्लभशर्मा

## प्रस्फुटम्

## मुख्यम्मादकीयम्

सदानन्दशा<sup>1</sup>

वाग्देवता त्वमसि देविसुरासुराणां  
वक्तुं न तेऽमरवराः प्रभवन्ति शक्ताः।  
त्वं चेन्मुखे वससि नैव यदैव तेषां  
यस्माद्भवन्ति मनुजा नहि तद्विहीनाः ॥

अये सुरभारती समाराधनस्तत्परान्तःकरणा शास्त्रसमुत्थरसास्वाददक्षाः संस्कृतानुरागिणः पाठकाश्च। विश्वस्यप्रथमान्तर्जालीयसंस्कृतत्रैमासिकजाह्नव्या एकोनविंशतिद्विंशतिसंयुक्ताङ्क विवेचकविदुषां पुरतः समुपस्थापयन् अमन्दमानन्दमनुभवामि।

साम्प्रतं राष्ट्रियान्तराष्ट्रियविदुषां श्रीमतां तत्रभवतां कृपाणवानां सहयोगमवाप्य पत्रिकेयं सारस्वतरङ्गस्थले नरीनर्त्ति। नानाप्राप्तेभ्यः समागतेभ्यः आलेखाः समागतास्तत्र नीरक्षीरविवेचनेनाऽस्माभिश्चतुर्दश आलेखाः पत्रिकायां समावेशिताः। यत्र व्यपदेशिवदेकस्मिन् परिभाषाविचारः, गृहवास्तुप्रकरणे सोपानक्रियाया मीमांसा, कलौ धर्मशास्त्रम्, उपनिषत्सु पर्यावरणस्य संरक्षणोपायश्च, भवभूतेः मालतीमाधवे अलङ्कारध्वनेः परिशीलनम्, सन्तान योग - ज्योतिषीय एवं वैज्ञानिकविश्लेषण, उपनिषद्दर्शनान्तर्निहितानि शैक्षिकतत्त्वानि, पूर्वत्रासिद्धसूत्रविचारप्रभृतयः पाण्डित्यपूर्णाः शोधनिबन्धा वर्तन्ते। एतेषां पण्डितप्रकाण्डानाम् आलेखाः कस्य वा चेतः नाकर्षयन्ति। एतदर्थं गहनशास्त्रीयचिन्तकान् पण्डितप्रवरान् सादरं स्तवीमि, येऽत्र सहयोगं कृतवन्तः।

संयुक्ताङ्कस्यास्य लोकार्पणकार्यक्रमः राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानपरिसरस्य हिमाचलस्थवेदव्यासपरिसरे महाकविभिः दूरस्थशिक्षानिदेशकैः शास्त्रसिद्धैः दुरूहग्रन्थोद्धारसमीक्षातत्परैः आचार्यरमाकान्तपाण्डेयमहाभागैः करकमलाभ्यां सम्पत्स्यते। विविधकार्यक्रमव्यस्तेनापि तैः कृपानुमतिः प्रदत्ता एतदर्थं साञ्जलिं कार्तेजं प्रकटयामो वयम्। पुनश्च नानाशास्त्रनदीष्णानां विदुषां तत्रभवतां साहाय्येनैव पत्रिकेयं पुष्पिता-पल्लविता-विकसितेति कृत्वा भृशमानन्दमनुभवन्तो वयमाधमर्ण्यं वितनुमः।

<sup>1</sup> पत्रिकाया मुख्यसम्पादकः।

श्रुतध्वनिमनोहरा शुभापावनी  
स्मृताप्यतनुतापहृत समवगाहसौख्यावहा।  
निषेव्यपदपंकजा विबुधमान्याऽमला  
समस्तजगतीतले प्रवहतादियं जाह्ववी।।

श्रैमत्कः

ज्ञोपाख्यः सदानन्दः

लखनौरम, विहारः

२३ जुलाई, २०१५

प्रकाशकीयम्



विपिनकुमारझा<sup>2</sup>

भक्तत्राणपरायणा भवभयाऽभावं समातन्वती

या देवीह सुदर्शनं नृपमणिं संरक्ष्य युद्धे खरे ।

या चास्मै समुदात् स्वराज्यमखिलं स्वीयं हतं शत्रुभिः

पायात् सा भुवनेश्वरी भगवती मां सर्वदा शर्मदा ॥

असारसंसाररङ्गस्थलेऽमुष्मिन् मानवाः स्वकीयान् पात्रतां यथाशक्यं प्रतिपादयन्ति। तत्र मानवजीवने सुखदुःखमयाः क्षणा आयान्ति यान्ति च। तेषु केचन पुण्यक्षणा येषु कञ्चन महनीयं कार्यम् आरभन्ते। तत्र विघ्ना अपि समापतन्ति। विघ्नानां परिहारोऽपि तैः क्रियते। इह श्रेयान् ज्ञानमये यज्ञेऽपि नितरां विघ्नानां समागमकारणादेव कदाचित् ज्ञानगङ्गाप्रतिहतामिव इव सञ्जाता किन्तु कालो हि बलवान् खलु इति धिया पुनः अहर्निशं प्रयासः सञ्जातः। तत्फलमेवेदम् एकविंशतिद्वविंशत्यङ्गपुष्पम्। एतत् भवतां करकमलयोः समर्पयन्त्यति मनो नः।

अङ्केऽस्मिन् किञ्चिद् नावीन्यमपि अनुष्ठितमस्माभिः। यथा-ग्रन्थसमीक्षाखण्डो, नवीनःकश्चन प्रकल्पः, विद्वत्परिचयश्च। ग्रन्थसमीक्षाखण्डेऽस्मिन् अभिनवं किञ्चित् प्रस्तूयते, यथाचार्यसत्यव्रतशास्त्रिविरचितसंस्कृतसाहित्यस्य सर्वप्रथमात्मकथा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्रेति शीर्षकाभिधानेति समीक्षा, तथैव नवीने प्रकल्पे पाणिनि अष्टाध्यायी-सिद्धान्तकौमुदी-धातुरूपमालाप्रभृतीनाम् एण्ड्रायड एप् निर्माणविषये संस्कृतक्षेत्रे अद्भुतं किमपि प्राकाश्यमगात्। इमानि एण्ड्रायड् एप् साधनानि राष्ट्रियसंस्थानस्य मुम्बईस्थ के. जे. सौमव्यापरिसरस्य शास्त्रेषु कृतभूरिपरिश्रमाणां विद्याविनयसम्पनानां शिष्यवत्सलानां शिक्षाशास्त्रविभागाध्यक्षाणां प्रो.मदनमोहनझावर्याणां निर्देशने तेषां तनयः आयुषान्-सृजनझा अपि च तनया आयुष्मती-श्रुतिझा आभ्यां निर्मितानि सन्ति। विद्वत्परिचयाख्ये खण्डे प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रविशारदानां रङ्गाचार्याणाम् अभिनयपुरुषाणाम् आचार्यकमलवशिष्टमहाभागानां परिचयोऽपि

<sup>2</sup> प्रकाशकः सम्पादकश्च

प्रदीयते। संस्कृतक्षेत्रे तकनीकियुगेऽस्मिन् कश्चन नवीनः पादप्रक्षेपो विद्यते। अश्रुपूरितनेत्राभ्याम् एभ्यो वशिष्टमहाभागेभ्यो सादरां सश्रद्धाञ्च श्रद्धाञ्जलिप्रसूनानि समर्पयति सारस्वत-निकेतनम्।

अस्तु तावत् सारस्वतकार्येऽस्मिन् प्रत्यक्षाप्रत्यक्षतया येषां सहयोगः अस्माभिर्लब्धः तेभ्यो सर्वेभ्यो विद्वत्प्रवरेभ्यो हार्दं धन्यवादान् वित्तीयं विरमति विस्तरात्।

विद्वच्चरणचञ्चरीकः,

बिपिनकुमारझा

बलाहरस्थ-वेदव्यासपरिसरः, हिमाचलप्रदेशः

23.07.2015

साहित्यानुरागः

## सन्तान-योग :- ज्योतिषीय एवं वैज्ञानिक विश्लेषण

मनोज श्रीमाल

सन्तान व्यक्ति की सर्वोच्च अनुकृति है। यह उसके जीवन में एक स्वर्णिम उपलब्धि है, क्योंकि यदि व्यक्ति के जीवन में सभी सुख हैं और उन्हें भोगने वाली कोई संतान नहीं है, तो सर्वथा व्यर्थ है। यही व्यक्ति के जीवन में वात्सल्य एवं ममत्व की आधारशिला है। इसलिए जाने-अनजाने माता-पिता के मन में संतान-प्राप्ति की चाह होती ही है। संतान गृहस्थ जीवन की प्रमुख नींव एवं सुखी जीवन का मूल आधार है। यही दास्यत्व जीवन में मधुर रस का संचार कर उसे पुष्पित एवं पल्लवित करती है। कई बार ऐसा देखा जाता है कि कुछ जातकों को विवाह के बहुत वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी संतान सुख नहीं मिल पाता है, जिससे उनके जीवन की समस्त खुशियाँ क्षीण हो जाती हैं। ऐसा लगता है जैसे जीवन में से रोशनी की किरण ही विलुप्त हो गई हो। आखिर क्यों होता है ऐसा। आइए, संतानहीनता एवं उसकी प्राप्ति के उपायों पर वैज्ञानिक एवं ज्योतिषीय दृष्टिपात करें।

प्राचीन समय में हमारे ऋषि-मुनियों ने जीवन की सुदृढ़ एवं सुखद संरचना तैयार कर इसे व्यवस्थित किया और उसी संरचना के फलस्वरूप हमें ऐसी क्रियाविधि प्रदान की, जिससे हमारा वर्तमान ही नहीं, वरन् भूत एवं भविष्य भी सँवर जाये। यह संरचना षोडश संस्कारों के रूप में हमें प्राप्त हुई, जिससे त्रयऋणों (देव-ऋण, गुरु-ऋण एवं पितृ-ऋण) के पाश से व्यक्ति स्वयं मुक्त हो सकता है। यह षोडश संस्कार व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त उसके साथ रहते हैं तथा कदम-कदम पर उसे अपने कर्तव्यों का बोध भी कराते हैं। इन्हीं षोडश संस्कारों के क्रम में विवाह संस्कार के उपरान्त श्रेष्ठ एवं आगामी जीवन की आधारशिला के रूप में गर्भाधान संस्कार किया जाता है। यह संस्कार पितृऋण को चुकाने तथा मोक्षप्रदायक संतान की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

एक ऐसी संतान की प्राप्ति, जिसके जन्म लेते ही परिवार में खुशियों का आलम छा जाए। जब वह बड़ा हो, तो माता-पिता की सेवा करे। जब माता-पिता की अन्तिम यात्रा हो, तो वही संतान उसे कन्धा देकर देववाहिनी अग्नि को समर्पित कर, तर्पण कर मुक्ति प्रदान करे। मृत्यु के उपरान्त भी वह उन्हें श्राद्ध के रूप में श्रद्धा प्रदान कर उन्हें याद करे। इस प्रकार इहलोक में ही नहीं, वरन् परलोक में भी उन्हें साथ दे। यही सन्तान गृहस्थ जीवन को जोड़ने का भी कार्य करती है, क्योंकि संतान ही पति-पत्नी के मध्य की योजक कड़ी है। दास्यत्व जीवन में यदि क्लेश हो रहा हो और यदि पति-पत्नी दोनों के मध्य सन्तान है, तो अच्छे संस्कारों वाले पूरी जिन्दगी संतान कि खातिर आपस में झगड़ा करके भी गुजार देते हैं।

यही सन्तान व्यक्ति की सर्वोच्च अनुकृति है। यह उसके जीवन में एक स्वर्णिम उपलब्धि है, क्योंकि यदि व्यक्ति के जीवन में सभी सुख हैं और उन्हें भोगने वाली कोई संतान नहीं है, तो सर्वथा व्यर्थ है। यही व्यक्ति के जीवन में वात्सल्य एवं ममत्व की आधारशिला है। इसलिए जाने-अनजाने माता-पिता के मन में संतान-प्राप्ति की चाह होती ही है।

संतान का जन्म वंशवृद्धि के लिए भी आवश्यक है। प्रायः व्यक्ति का यही चिन्तन रहता है कि मेरे पश्चात् मेरे नाम को चलाने वाला कोई रहे। एक ऐसी संतान की प्राप्ति हो, जो मुझसे भी ज्यादा योग्य हो। यह

एक ऐसा भाव है, जो केवल अपनी संतान के लिए ही रहता है, अन्य के लिए नहीं। कोई उन्हें अपना कहकर पुकारे, एक ऐसा सज्जोधन करे, जो दिन-रात उनके श्रुतिपटलों में मधुर ध्वनि बनकर गुंजायमान हो। कई बार ऐसा देखा जाता है कि कुछ जातकों को विवाह के बहुत वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी संतान सुख नहीं मिल पाता है, जिससे उनके जीवन की समस्त खुशियाँ कम हो जाती हैं। ऐसा लगता है जैसे जीवन में से रोशनी की किरण ही लुप्त हो गई हो।

संतानहीनता एक अभिशाप है, जिसके कारण प्राणी का हृदय अपूर्णता के भाव से बारम्बार ग्रसित होता रहता है, क्योंकि पुरुष को पितृत्व की प्राप्ति एवं स्त्री को ममत्व की प्राप्ति का प्रमुख हेतु संतान ही है। पुरुष तो जैसे-तैसे अपने मन को समझा भी लेता है, परन्तु मातृत्व की प्रतिमूर्ति स्त्री को गहरा आघात लगता ही है। वह अपने को मातृत्वविहीन समझती है। इस हीन भावना से दास्यत्वजीवन में विघटन होना भी सञ्भव है, अतः संतान गृहस्थ जीवन की प्रमुख नींव एवं सुखी जीवन का मूल आधार है। यही दास्यत्व जीवन में मधुर रस का संचार कर उसे पुष्पित एवं पल्लवित करती है।

जब हम संतानहीनता के कारणों की तरफ दृष्टिपात करते हैं तो इस परिप्रेक्ष्य में अनेक कारण दृष्टिगोचर होते हैं। कारणों की विवेचना की दृष्टि से हम इसे दो वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं। प्रथम वैज्ञानिक एवं द्वितीय ज्योतिषीय।

### वैज्ञानिक अथवा चिकित्सकीय कारण :

वैज्ञानिक दृष्टि से जब हम संतानहीनता के कारणों पर दृष्टिपात करते हैं, तो प्रत्यक्ष ही पुरुष अथवा स्त्री दोनों में से किसी की भी शारीरिक न्यूनता का कारण ही दृष्टिगोचर होता है। पुरुष में शुक्राणुओं की न्यूनता तथा स्त्रियों को मासिक धर्म सञ्चलित समस्या सन्तान न होने अथवा विलम्ब से होने का प्रमुख कारण बनती है। आइये, पुरुष तथा स्त्री दोनों में संतानहीनता सञ्चलित न्यूनता के कारणों का विश्लेषण करें।

### पुरुष लक्षण :

पुरुष के वीर्य (Sperm)में पर्याप्त संख्या में शुक्राणुओं के अभाव से भी पुरुष में बांझपन होता है। संतान उत्पत्ति के लिए वीर्य में पर्याप्त मात्रा में स्वस्थ शुक्राणुओं का होना आवश्यक है, यहाँ यह बताना आवश्यक होगा कि बांझपन का नपुंसकता से कोई लेना देना नहीं है। बांझ पुरुष संभोग की क्रिया को पूरी कुशलता से सञ्चर कर लेते हैं, अधिकतर पुरुष नपुंसकता और शुक्राणुविहीनता के अंतर को नहीं समझते, इसलिए डाक्टर के पास जांच के लिए जाने से ही घबराते हैं, जो कुछ चले भी जाते हैं, वे डाक्टर के द्वारा की जाने वाली वीर्य परीक्षण जांच की राय को अनसुना करते हैं और अपनी पत्नियों को मंहगे एवं कष्टप्रद इलाज के लिए प्रेरित करते हैं।

पुरुषों में बांझपन के कुछ कारण जन्मजात होते हैं यथा - गर्भावस्था के दौरान 9वें महीने में ही गर्भ में पल रहे नर शिशु के वृषण वृषणकोश में नहीं पहुँच पाते, शिशु के पेट के भीतर ही रह जाते हैं, पेट के अंदर का तापमान बाहर की अपेक्षा लगभग 1 डिग्री अधिक होता है, इसलिए कुछ समय बाद शुक्राणुओं का विघटन शुरु हो जाता है, समय रहते आपरेशन व उचित इलाज द्वारा इस समस्या का निदान हो सकता है, इलाज के अभाव में ये बच्चे बड़े हो कर पुरुष बांझपन का शिकार बनते हैं। वृषणकोश के आसपास का तापमान बढ़ जाने से भी शुक्राणु प्रभावित होते हैं, जिस से उन में विघटन शुरु हो जाता है। अत्यन्त कसे जँघिए, लंगोट तथा *सिंथेटिक* कपड़े का प्रयोग तापमान बढ़ने का मुख्य कारण है। *स्मालपाक्स*

(Smallpox), मज़ (Mumps) जैसे संक्रामक रोग भी शुक्राणु बनाने की प्रणाली को नष्ट करते हैं और बड़े होने पर पुरुष बांझपन का कारण बनते हैं।

वृषणों पर चोट भी पुरुष बांझपन का कारण बनती है। *वेरिकोसील (Varicocele)* नामक रोग में वृषणों की रक्त शिराओं में सूजन आ जाती है, जिस से रक्तप्रवाह में बाधा उत्पन्न होने से वृषणों का तापमान बढ़ जाता है और परिणाम स्वरूप शुक्राणु नष्ट होने लगते हैं।

**हारमोन संबंधी अनियमितताएं:** *प्रोलैक्टिन हारमोन (Prolactin Hormone)* के रक्त स्तर में वृद्धि से शुक्राणुओं के निर्माण में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

**मार्ग अवरोध :** शुक्राणुओं को वृषणों से मूत्रनली तक लाने वाली नली में अवरोध के कारण भी शुक्राणु बाहर नहीं आ पाते, इस स्थिति को *ओब्स्ट्रक्टिव एजूस्परमिया (Obstructive Azoospermia)* कहते हैं।

**शल्यचिकित्सा :** अयोग्य डाक्टर द्वारा *हाइड्रोसील (Hydrcele)* व *हार्निया (Hernia)* का आपरेशन करते समय कई बार शुक्राणुवाहिका कट जाती है और शुक्राणु शरीर से बाहर नहीं निकल पाते, ऐसे पुरुष बांझ हो जाते हैं।

कभी-कभी आनुवंशिक कारणों से भी शुक्राणुवाहिका का विकास नहीं होता, जिस के परिणामस्वरूप शुक्राणु वीर्य में प्रवेश पाने में असमर्थ होते हैं। इसके अतिरिक्त रासायनिक प्रदूषण, कीटनाशकों से संपर्क, जैविक घड़ी की अनियमितता, अत्यधिक मानसिक तनाव आदि भी शुक्राणुओं के विकास में घातक होते हैं।

#### स्त्री लक्षण :

पुरुषों की तरह ही स्त्रियों में भी संतानहीनता के कतिपय कारण होते हैं। यूं तो बन्ध्यत्व के कई कारण हो सकते हैं तथापि मुख्यतः स्त्री बांझपन को तीन प्रभेदों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

**प्रथम -** आदि बन्ध्यत्व यानि जो स्त्री पूरे जीवन में कभी गर्भ धारण ही न करे, इसे *प्राइमरी स्टेरिलिटी (Primary Sterility)* कहते हैं।

**द्वितीय -** काकबन्ध्यत्व यानि एक संतान को जन्म देने के बाद किसी भी कारण के पैदा होने से फिर गर्भ धारण न करना। एक संतान हो जाने के बाद स्त्री को बांझ नहीं कहा जा सकता, अतः ऐसी स्त्री को काक बन्ध्यत्व<sup>2</sup> यानी *वन चाइल्ड स्टेरिलिटी (One Child Sterility)* कहते हैं।

**तृतीय -** *गर्भस्रावण बन्ध्यत्व यानी गर्भ तो धारण कर ले पर गर्भकाल पूरा होने से पहले ही गर्भस्राव या गर्भपात हो जाए। इसे रिलेटिव स्टेरिलिटी (Relative Sterility)* कहते हैं।

इसके अलावा स्त्री के प्रजनन अंग का आंशिक या पूर्णतः विकसित न होना यानी योनि या गर्भाशय का अभाव, डिंबवाहिनी यानी *फेलोपियन ट्यूब* में दोष होना, पुरुष शुक्राणुहीनता के कारण गर्भधारण न कर

पाना, श्वेतप्रदर, गर्भाशय ग्रीवा शोथ, योनि शोथ, टीबी आदि कारणों से योनिगत स्राव क्षारीय हो जाता है, जिसके संपर्क में आने पर शुक्राणु नष्ट हो जाते हैं व गर्भ नहीं ठहर पाता।

इन तीनों प्रभेदों के आधार पर स्त्री बन्ध्यत्व को दो भागों में बांटा जा सकता है, एक तो पूर्ण रूप से बन्ध्यत्व होना, जिसका कोई इलाज न हो सके और दूसरा अपूर्ण बन्ध्यत्व होना, जिसे उचित चिकित्सा अथवा अन्य उपायों के द्वारा दूर किया जा सके।

यथा - वह महिला जिसके गर्भाशय में कुछ कमी हो या उसे मासिक धर्म ठीक समय पर नहीं आता है तथा वह संतान पैदा करने के लायक नहीं है, उस महिला को **नास्त्रीक** कहा जा सकता है। **बांझ** उस स्त्री को कहते हैं, जिस स्त्री के गर्भाशय नहीं होता या उसे मासिक धर्म नहीं आता हो। लेकिन इसके अलावा कई स्त्रियाँ ऐसी भी होती हैं, जो मासिक धर्म होते हुए भी नास्त्रीक कहलाती है। जातकपारिजात में बन्ध्या, वृद्धा, कृशा, बाला, रोगिणी, पुष्पवर्जिता, कर्कशा, स्थूलदेहा ये ८ स्त्रियाँ वर्जित हैं। विवाह से पूर्व इनकी परीक्षा कर लेनी चाहिए।<sup>१</sup>

आयुर्वेद<sup>२</sup> ने महिलाओं में २० प्रकार के योनि दोष बताए हैं, जिनमें से कोई भी रोग स्त्री के बांझपन का कारण हो सकता है। चरकसंहिता के अनुसार ये सभी योनिदोष स्त्रियों के मिथ्या आहार-विहार के कारण, आतं व की दुष्टि के कारण, शुक्र के दूषित होने के कारण और भाग्य विपरीत होने के कारण उत्पन्न होते हैं।<sup>३</sup>

#### ज्योतिषीय कारण :

जब स्त्री अथवा पुरुष के शरीर में किसी भी प्रकार की न्यूनता होती है, तो उसके जन्माङ्ग में तत्सञ्ज्थित ग्रहजनित दोष आ जाते हैं। उपर्युक्त चिकित्सकीय कारणों का अन्वेषण कर लेने के पश्चात् आइये अब हम ज्योतिषीय दृष्टि से भी संतानहीनता के कारणों पर दृष्टिपात कर लें। जब ज्योतिषीय कारणों की विवेचना की जाती है, तो अनायास ही संतान सञ्ज्थित अनेक प्रश्नों का प्रादूर्भाव हमारे मन-मस्तिष्क में हो जाता है। यथा -

1. क्या हमें संतान की प्राप्ति होगी ?
2. हमें संतान की प्राप्ति कब होगी ?
3. वह संतान कैसी होगी ?
4. हमारे कितनी संतान होगी ?
5. पुत्र होगा अथवा पुत्री ?
6. हमारी सेवा करेगी या नहीं करेगी।
7. हमारे संतान तो होती, परन्तु वह जीवित नहीं रहती। क्यों ?
8. संतान होने से पूर्व ही गर्भपात हो जाता। क्या करें ?
9. हमारी संतान की आयु कितनी होगी ?
10. हमें सन्तान-सुख की प्राप्ति कैसे होगी ?

ऐसे अनगिनत प्रश्न मन-मस्तिष्क को झंकृत कर देते हैं।

आइए, ज्योतिषीय परिप्रेक्ष्य में संतान से जुड़े ऐसे ही कतिपय प्रश्नों की खोज में अपने मस्तिष्क को एकाग्र करें तथा इन प्रश्नों का उत्तर खोजने की चेष्टा करें।

जन्मकुण्डली में पंचम भाव पुत्रभाव कहलाता है।<sup>१०</sup> यही भाव संतान से सञ्बन्धित है। पंचम भाव, पंचमेश, पंचम भाव में स्थित ग्रह एवं वे ग्रह किस स्थान के स्वामी हैं तथा संतान के मूल कारकग्रह बृहस्पति की स्थिति पर विचार करके ही हम संतान पक्ष पर निर्णय ले सकते हैं। इसी प्रकार पुरुष में शुक्राणु का प्रमुख कारक शुक्र<sup>११</sup> को तथा स्त्री में रज का कारक मंगल को माना जाता है। यौनि अथवा लिंग की राशि वृश्चिक एवं भाव अष्टम को माना जाता है।<sup>१२</sup>

### संतानपक्ष में बाधा क्यों ?

सर्वप्रथम हमें जन्मकुण्डली में उन योगों एवं ग्रहों का अन्वेषण करना चाहिए, जो सन्तानोत्पत्ति में बाधक बन रहे हों। ऐसे अनेक कारण ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों<sup>१३</sup> में देखने को मिलते हैं। सन्तान बाधा के कारणों में पूर्वजन्मकृत कतिपय शापों<sup>१४</sup> का दृष्टान्त भी उपलब्ध होता है। इस शाप का पता हमें जन्मकुण्डली में बाधाकारक ग्रह के अन्वेषण से होता है। बाधाकारक ग्रह जिस राशि में बैठा हो, उसके अनुसार यह निर्णय करना चाहिए कि किस देवता, वृक्ष या जीव के कारण बाधा हो रही है और उसकी शान्ति का विधान करना चाहिए।<sup>१५</sup> ग्रन्थों में सभी ग्रहों से सञ्बन्धित हो रही बाधा एवं उस ग्रह से सञ्बन्धित कारणों एवं उपायों को विस्तार से वर्णित किया गया है। यथा<sup>१६</sup> -

१. यदि सन्तान बाधाकारक ग्रह सूर्य है, तो भगवान् शंकर एवं गरुड़ से द्रोह के कारण अथवा पितरों के शाप का फल समझना चाहिए।
२. यदि संतान बाधाकारक ग्रह चन्द्र है, तो माता या किसी अन्य सधवा स्त्री के चित्त को दुःख पहुँचाने के कारण या भगवती का शाप समझना चाहिए।
३. यदि सन्तान बाधाकारक ग्रह मंगल हो, तो ग्रामदेवता, भगवान् कार्तिक स्वामी के प्रति अवज्ञा से या शत्रुओं अथवा भाई-बन्धुओं के शाप से सन्तान उत्पत्ति में बाधा समझनी चाहिए।
४. यदि बुध सन्तानबाधाकारक है, तो बिल्ली को मारने के कारण अथवा मछलियों के या अन्य प्राणियों के अण्डों को नष्ट करने के कारण या कम उम्र के बालक-बालिकाओं के शाप से या भगवान् विष्णु के कोप से सन्तानबाधा समझनी चाहिए।
५. यदि जन्म कुण्डली में बृहस्पति सन्तान बाधाकारक है, तो इस जन्म में अथवा पूर्व जन्म में जातक ने फलदार वृक्षों को काटा है या अपने कुलगुरु अथवा कुलपुरोहित से द्रोह किया है।
६. यदि शुक्र सन्तानहीनता का कारण है, तो जातक ने पुष्पदार वृक्षों को काटा है अथवा गौ के प्रति कोई पाप किया है अथवा किसी साध्वी स्त्री के शाप के ऐसा हुआ है। प्रायः ऐसी स्थिति में यक्षिणी का शाप समझना चाहिए।
७. जन्मकुण्डली में यदि शनि संतानबाधाकारक है, तो जातक ने पीपल के पेड़ कटवाये और पिशाच, प्रेत तथा यमराज के शाप से ऐसा हुआ है।
८. राहू पंचम में हो या पंचमेश को दूषित करता हो और उसके कारण सन्तान बाधा हो रही हो तो सर्पशाप के कारण ऐसा हुआ है ऐसा समझना चाहिए।
९. यदि केतु के कारण यह दोष हो तो ब्राह्मणशाप के कारण समझना चाहिए।

इन शापों के अलावा कतिपय निम्नलिखित योग भी हैं, जो कि सन्तानोत्पत्ति के बाधा उत्पन्न करते हैं -

१. सप्तमेश पुत्रभाव में हो तो पुत्र-रहित या स्त्री से हीन हो। पुत्रभाव से अष्टम, षष्ठ, द्वादश राशि में पापग्रह हों तो सन्तान नहीं होती है। राहू पंचम में हो, पंचमेश दुःस्थान में हो तो जातक पुत्र हीन होता है।<sup>१७</sup>
२. पुत्रेश और धनेश बलरहित हों एवं पुत्रभाव पापग्रह से देखा जाता हो तो जातक अनेक स्त्री वाला होने पर भी निश्चय सन्तान से रहित होता है।<sup>१८</sup>
३. पंचम स्थान में बृहस्पति की स्थिति भी संतानपक्ष के लिए हानिकारक है।<sup>१९</sup>
- चन्द्रमा दशम भाव में, शुक्र सप्तम में हो पापग्रह चतुर्थ में हों तो उसके सन्तान का निस्सन्देह नाश होता है।<sup>२०</sup>
४. यदि कुण्डली में पंचम भाव में मंगल हो तो पुत्र उत्पन्न हो-होकर नष्ट हो जाते हैं।<sup>२१</sup> यदि पंचमस्थ मंगल, गुरु या शुक्र से दृष्ट हो तो प्रथम सन्तान नष्ट होती है, समस्त ग्रहों से दृष्ट होने पर सन्तति नष्ट नहीं होती है।<sup>२२</sup>
५. लग्न, चन्द्रमा और बृहस्पति से पंचम स्थान पापग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हों और उन स्थानों में शुभ ग्रहों की स्थिति एवं दृष्टि न हो, तो सन्तान प्राप्ति में बाधा होती है।<sup>२३</sup>
६. लग्न, चन्द्रमा और बृहस्पति से पाँचवें स्थानों के स्वामी दुःस्थानों (६,८,१२) में स्थित हों।<sup>२४</sup>
७. लग्न, चन्द्रमा और बृहस्पति से पंचम स्थान पापग्रहों के मध्य स्थित हों।<sup>२५</sup>
८. यदि कोई पापग्रह पंचम स्थान का स्वामी होकर उसी स्थान में स्थित हो, तो संतान होती है, परन्तु यदि शुभग्रह स्वराशि का स्वामी होकर पंचम में स्थित हो और पंचम में पापग्रह स्थित हो तो वह सन्तान हानि करता है।<sup>२६</sup>
९. वृष, सिंह, कन्या और वृश्चिक अल्पसुत राशि कहलाती है। यदि यह राशियाँ पंचम भाव में स्थित हो तो अल्पसंतति होती है और वह भी बहुत समय के पश्चात्।<sup>२७</sup>
१०. यदि कुण्डली में लग्न से दशम भाव में चन्द्रमा, सप्तम में शुक्र एवं चतुर्थ भाव में पापग्रह हों तो जातक वंश को नष्टकरता है अर्थात् सन्तानरहित होता है।<sup>२८</sup>
११. पंचमेश अस्तंगत, पापग्रहाक्रान्त या दुर्बल हो तो पुत्रोत्पत्ति नहीं होती है।

### संतान न होने के कतिपय अन्य व्यावहारिक कारण :

उपर्युक्त चिकित्सकीय एवं ज्योतिषीय कारणों के अलावा कतिपय व्यावहारिक कारण भी हैं, जो संतान विलम्बता एवं संतान हीनता को प्रदर्शित करते हैं अथवा इसके लिए जिम्मेदार हैं, यथा -

१. आज का युवावर्ग आजीविका को सर्वोपरि मानकर उसी में ही लगा रहता है, जिससे यह वर्ग विवाह संस्कार जैसे मूलभूत संस्कार से कुछ समय के लिए विलम्बित हो जाता है। जब यह संस्कार ही विलम्ब से होगा तो संतान का पक्ष भी अच्छा रहेगा।
२. कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि यदि परिवार में जातक से बड़े भाई अथवा बहिन का विवाह संस्कार नहीं हो रहा हो अथवा उसमें विलम्ब हो गया हो, तो परिवार के संस्कार वंश उसके विवाह संस्कार में भी विलम्ब हो जाता है और संतान योग बाधित होता है।
३. परिवार नियोजन भी वर्तमान में एक बड़ा कारण हो सकता है, संतान विलम्ब का। क्योंकि सरकार की नीतियों ने संतान की संख्या अथवा संतान पक्ष को बाधित कर रखा है।
४. कभी-कभी पत्नी एवं पति दोनों को आजीविका के सञ्बन्ध में एक दूसरे से अलग रहना पड़ता है, तो यह भी संतान विलम्ब का कारण बनता है।
५. कई बार दास्यत्वजीवन में कड़वाहट के कारण भी पति-पत्नी के दूसरे से विमुख रहते हैं, जिसके कारण संतान विलम्ब होता है।

उपर्युक्त सभी कारणों से संतान होने में विलम्ब होता है और जब सन्तति उत्पन्न करने की आयु निकल जाती है, तो संतान सञ्जम्भी शारीरिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं और संतानबाधा होती है। जब जन्मकुण्डली में उपर्युक्त समस्त बाधाओं का शमन हो जाता है, तो संतान उत्पत्ति का योग बनता है। आइए अब हम उन योगों पर दृष्टिपात करें, जिनके होने से जातक को सन्तान-प्राप्ति होती है।

### सन्तान-प्राप्ति योग

1. यदि लग्न से पंचम भाव शुभ ग्रह युक्त या दृष्ट हो, तो सन्तान होती है।<sup>16</sup>
  2. लग्नेश पंचम भाव में स्थित हो एवं पंचमेश बली हो, तो संतान होने के प्रबल योग बनते हैं।<sup>17</sup>
  3. लग्नाधिपति और पंचमाधिपति के मध्य स्थान परिवर्तन हो, तो संतान होने के प्रबल योग बनते हैं।
  4. यदि पंचमेश पर गुरु एवं लग्नेश की दृष्टि हो, तो जातक के अनेक संतान होती है।<sup>18</sup>
  5. जन्म लग्न एवं चन्द्र लग्न से पंचम भाव का स्वामी और बृहस्पति अगर शुभ स्थान में विराजमान हैं तो इस शुभ ग्रह स्थिति में संतान योग प्रशस्त होगा।<sup>19</sup>
  6. शुभराशिस्थ पंचमेश केन्द्र-त्रिकोण में हो, शुभयुक्त हो तो बाल्यावस्था में ही पुत्रप्राप्ति होती है।<sup>20</sup>
  7. यदि लग्नेश तथा पंचमेश यदि पंचम भाव में अथवा केन्द्र तथा नवम में हो तो पूर्ण रूप से पुत्रजन्म सुख होता है।<sup>21</sup>
  8. एकादश भाव में बुध, शुक्र अथवा चंद्र में से एक भी ग्रह हो तो संतान का सुख मिलता है, इसी प्रकार पंचम भाव में यदि मेष, वृष अथवा कर्क राशि में केतु हो तो संतान योग की संभावना बनती है।
  9. लग्नेश व नवमेश यदि कुण्डली में सप्तम भाव में होते हैं तो संतान सुख प्राप्त होता है। लग्नेश और पंचमेश के उच्च राशि में होने पर भी शुभ परिणाम मिलता है, इसी प्रकार लग्नेश पर बृहस्पति की शुभ दृष्टि भी मंगलकारी होती है।
  10. कुण्डली में केन्द्र स्वामी त्रिकोणगत होते हैं तो संतान योग अच्छा बनता है, इसी प्रकार नवम भाव में गुरु, शुक्र एवं पंचमेश हो तो उत्तम संतान का योग बनता है।
- जब जातक की जन्मकुण्डली में यह सुनिश्चित हो जाता है कि उसके संतान होगी तो उसके मन में पुनः प्रश्न समुपस्थित होता है कि पुत्र होगा अथवा पुत्री? वस्तुतः वर्तमान सन्दर्भ में यह प्रश्न उतना प्रासंगिक नहीं है क्योंकि पुत्र हो अथवा पुत्री दोनों ही वर्तमान समय में समान है। फिर भी मानसिक उहापोह की दृष्टि से इस प्रश्न का समाधान खोजने की चेष्टा करते हैं कि -

### पुत्र होगा अथवा पुत्री ?

1. पंचमेश स्वराशि में हो तो जातक के अल्पपुत्र होते हैं। पुत्रेश का नवांशपति अपने नवांश में हो तो एक पुत्र होगा।<sup>22</sup>
2. पाँचवे भाव पर बृहस्पति की दृष्टि पुत्र प्रदान करती है। यदि पंचमभाव अथवा पंचमेश एवं गुरु शुभग्रह से दृष्ट हो तथा शुभग्रह से युक्त हो तो निस्सन्देह पुत्रप्राप्ति होती है।<sup>23</sup>
3. लग्न से पंचम भाव शुक्र या चन्द्र के वर्ग में हो शुक्र या चन्द्र से युक्त अथवा दृष्ट हो, पापग्रह से युक्त न हो तो जातक बहुपुत्रवाला होता है। यदि शनि एवं मंगल द्वारा दृष्ट हो तो पुत्र से रहित होता है।<sup>24</sup>
4. यदि कुण्डली में लग्न अथवा चन्द्रमा से पंचम भावस्थ शुक्र ग्रह की राशि में एक ही गुरु वर्ग प्राप्त हो वा बली शुभ ग्रह से दृष्ट पंचमस्थ शुभ राशि हो तो जातक को अपनी स्त्री में स्वयं के गर्भाधान से पुत्र होता है।<sup>25</sup>

5. पुत्र स्थान का स्वामी वा नवमेश लग्न से सप्तम हो या सप्तम राशि में हो एवं चन्द्र तथा शुक्र से दृष्ट हो तो कन्या उत्पन्न होती है। इसी के साथ पंचमेश विषम राशि में हो पुरुषग्रह (सू. मं. एवं बृ.) से दृष्ट या युत हो तो जातक अधिक पुत्र से युक्त होता है।<sup>26</sup>
6. यदि पंचमेश, बृहस्पति, मंगल एवं सूर्य जन्मकुण्डली में कहीं भी स्थित हों, किन्तु पुरुष नवांश में हो तो बहुपुत्र होते हैं।<sup>27</sup>
7. यदि पंचम भाव पुरुष राशि, पुरुष अंश में स्थित हो और पंचम में पुरुष ग्रह बैठे हों, या पंचम को पुरुष ग्रह देखते हों और पंचमेश भी पुरुष राशि, पुरुष अंश में स्थित हों तथा पुरुष ग्रहों द्वारा देखा जाता हो या पुरुष ग्रहों के साथ हो तो पुत्र होंगे, किन्तु यदि इसके विपरीत अर्थात् स्त्री राशि, स्त्री नवांश में है तो कन्या जन्म होगा।<sup>28</sup>
8. शनि भी पंचम भाव में स्थित होकर पुत्रयोगकारक होता है।<sup>29</sup>
9. चन्द्रयुक्त पंचमेश चन्द्रमा के ही द्रेष्काण में हों तो कन्योत्पत्ति का निर्देश करना चाहिए।<sup>30</sup>
10. चतुर्थ तथा षष्ठ भाव पापयुक्त हो, परमोच्चगत पंचमेश लग्नेश के साथ रहे, और पुत्रकारक ग्रह भी शुभग्रहयुक्त हो तो दशपुत्र होते हैं।<sup>31</sup>
11. यदि कुण्डली में पंचम भाव में पापग्रहों की राशि में बली पापग्रह हो तथा शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो जातक को पुत्र की प्राप्ति नहीं होती है।<sup>32</sup>

### क्यों होता है गर्भपात ?

1. चन्द्रमा या सप्तम भाव या लग्न से पंचम भाव पापाक्रान्त हो और स्वयं चन्द्रमा या सप्तम भाव, या लग्न पापयुक्त हो तो पुत्र जीवित नहीं रहता है। इनमें से दो योग होने पर सन्तान शीघ्र मर जाती है। इनमें से तीन अथवा चार योग हो तो सन्तान निश्चित ही नहीं होती है।<sup>33</sup>
  2. पंचम भाव में यदि बुध-सूर्य, मंगल, शनि से युति करें, तो गर्भपात हो सकता है।<sup>34</sup>
  3. पंचम भाव में शनि या राहु अथवा केतु हो तो गर्भ का नाश होता है।<sup>35</sup>
  4. जितने संज्ञक बलवान् पापग्रह पंचम भाव के नवांश में हो तथा यदि वे शुभग्रह से दृष्ट न हों तो उतने ही गर्भ का नाश होता है।<sup>36</sup>
  5. यदि जन्मकुण्डली में केतु बाधक हो तो भ्रूणहत्या दोष से सन्तान नहीं होती है।<sup>37</sup>
- यदि बृहस्पति, शुक्र पंचम या अष्टम में हो अथवा मंगल पंचम अथवा अष्टम में हो तो जातक स्त्री मृतवत्सा होती है।<sup>38</sup>
6. पंचमेश षष्ठस्थान में हो और लग्नेश मंगल से युक्त हो तो प्रथम सन्तान की मृत्यु और उसकी पत्नी काकबन्ध्या होती है। इसी प्रकार पंचमेश नीचस्थ होकर षष्ठादित्त्रिक स्थानों में रहे और पंचमभाव में केतु-बुध हों तो भी पत्नी काकबन्ध्या होती है। नीचस्थ पंचमेश पंचमभाव को नहीं देखे और शनि-बुध पंचम स्थानस्थ हो, तो भी काकबन्ध्या होती है।<sup>39</sup>

### संतान की संख्या कितनी ?

आधुनिक जीवन में परिवार नियोजन के कारण संतान की संख्या का अनुमान लगाना कठिन है। परिवार नियोजन ने इस योग को असफल घोषित कर रखा है। कहीं सरकारी नीतियाँ भी इस योग में बाधक हो जाती हैं।



१. यदि पंचम भाव में कुम्भ राशि का शनि हो तो उसे पाँच पुत्र होते हैं। और पंचम भाव में मकर राशि का शनि हो तो तीन कन्याएँ होती हैं। इसी प्रकार यदि मकर राशि का मंगल पंचम भाव में हो तो तीन पुत्र होते हैं।<sup>१०</sup>
२. अकेला बृहस्पति पंचम भाव में होने से पाँच पुत्र होते हैं।<sup>११</sup>
३. यदि बृहस्पति पंचम से नवम भाव में हो, पंचमेश बली हो एवं द्वितीयेश दशमस्थ हो, तो जातक को तीन से अधिक संतानों की प्राप्ति होती है।
४. यदि पंचम भाव का स्वामी, बृहस्पति, मंगल और सूर्य जन्मकुण्डली में कहीं पर जी स्थित हों परन्तु पुरुष नवांश में हो तो ऐसे व्यक्ति के बहुत पुत्र होते हैं।<sup>१२</sup>
५. यदि शुक्र तृतीय भाव में हो तो तीन पुत्र होते हैं। मंगल यदि तृतीय भाव में हो तो दो कन्याएँ होती हैं, किन्तु पुत्र एक भी नहीं होता है।<sup>१३</sup>
६. यदि सप्तम भाव में केवल शुक्र ही हो तो उसे दो कन्या शीघ्र होती है। इसी प्रकार यदि शुक्र और शनि दोनों लग्न में हों तो तीन पुत्र होते हैं।<sup>१४</sup>

जब संतान हो जाती है तो प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक चाह होती है कि उसकी संतान उसका नाम रोशन करें। वो उसका कहना माने और उससे भी दो कदम आगे बढ़ कर रहे। उसके मन में प्रश्न उठता है कि उसकी संतान -

#### क्या सन्तान आज्ञाकारी अथवा यशस्वी होगी ?

१. यदि पंचमेश लग्न में हो या उस पर लग्नेश की दृष्टि हो और लग्नेश भी पंचम के साथ इसी स्थिति में हो, तो संतान आज्ञाकारी होती है।
२. यदि पंचमेश पीडित हो और उस पर लग्नाधिपति की दृष्टि न हो, किन्तु मंगल और राहु की दृष्टि हो, तो आज्ञाकारी संतान का जन्म होता है।
३. सभी ग्रह अपने उच्च में अथवा केन्द्र में होकर पंचम भाव को देखते हो तो निश्चय ही राजा के समान ऐश्वर्यशाली पुत्र की प्राप्ति होती है।<sup>१५</sup>
४. पंचम भाव में शनि होने पर सन्तान आलसी और दुष्ट होती है।
५. यदि पंचम भाव का स्वामी, बृहस्पति, मंगल और सूर्य जन्मकुण्डली में कहीं पर जी स्थित हों परन्तु पुरुष नवांश में हो तो ऐसे व्यक्ति के बहुत पुत्र होते हैं।<sup>१६</sup>
६. यदि पंचम भाव का स्वामी गुरु बली अवस्था में हो और लग्नेश की गुरु पर दृष्टि हो तो होने वाली संतान आज्ञाकारी होगी।

#### संतान की अल्पायु के कारण

१. यदि राहु, कर्क अथवा सिंह राशि का हो, चन्द्रमा सूर्य से युक्त हो और लग्न शनि तथा मंगल से दृष्ट हो तो बालक १५ दिन के अन्दर ही मृत्यु को प्राप्त करता है।<sup>१७</sup>
२. यदि लग्न में शनि, अष्टम में चन्द्रमा और तृतीय स्थान में यदि बृहस्पति स्थित हो तो बालक मृत्यु को प्राप्त होता है।<sup>१८</sup>

३. जिसके जन्मसमय जन्मलग्न से सप्तम में सूर्य शनि और एकादश में यदि गुरु शुक्र हों तो वह बालक १ मास के अन्दर ही मृत्यु को प्राप्त करता है।<sup>१९</sup>
४. जिसके जन्मसमय में बृहस्पति से पंचम भाव पापग्रहों से आक्रान्त हो और बृहस्पति भी पापग्रह से युक्त हो तो पुत्र नहीं जीता है।<sup>२०</sup>
५. पंचम भाव से द्वितीय एवं द्वादश भाव में पापग्रह स्थित हो, तो संतान अल्पायु होगी।
६. जब पंचमेश क्रूर और नीच नवांश में हो, तो संतान अल्पायु होगी।
७. पंचम भाव में एकाधिक पापग्रह हों, तो संतान की आयु कम होगी।
८. नवम और पंचम भाव में पापग्रह, लग्न में क्षीण चन्द्रमा तथा शनि की राशि में अस्तगत गुरु स्थित हो, तो संतान अल्पायु होती
९. पुत्रभाव में राहु हो तथा पंचमेश पापग्रह से युक्त हो तथा गुरु अपने नीच में हो तो ३२ वें वर्ष में पुत्र का निधन हो जाता है।<sup>२१</sup>
१०. शुक्र एवं लग्न से पंचम भाव में यदि पापग्रह हो तो ३३ या ३६ वें वर्ष में पुत्र का निधन हो जाता है।<sup>२२</sup>

#### सन्तान प्राप्ति के ज्योतिषीय उपाय

जब हमें चिकित्सकीय एवं ज्योतिषीय न्यूनता की वजह से संतान न होने के कारणों का पता चल जाए तत्पश्चात् हमें संतानजनित ग्रहदोषनिवारण का उपाय करना चाहिए। क्योंकि जो ग्रह अशुभफलदायक हैं वे भी दान, जप, पूजा आदि से प्रसन्न होकर शुभ फलदायक होते हैं।<sup>२३</sup> ध्यातव्य है कि ज्योतिषीय उपायों के साथ ही हमें चिकित्सकीय उपाय भी करते रहना चाहिए। क्योंकि ज्योतिषशास्त्र में कहीं पर भी चिकित्सकीय उपायों का निषेध नहीं है, यहाँ पर अन्य उपायों के साथ-साथ औषधियों का भी उपयोग बताया गया है।<sup>२४</sup> और वैसे भी प्रयत्न यदि सभी और से हो तो परिणाम की प्राप्ति में सन्देह नहीं रहता। ज्योतिषशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में संतानप्राप्ति के अनेक अचूक एवं स्वयंसिद्ध उपायों का वर्णन प्राप्त होता है। निम्नलिखित उपायों को पति-पत्नी दोनों पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ करें तो उनकी इच्छा अवश्य पूरी होगी। यथा -

#### १. विभिन्न ग्रहों का दोष निवारण :

बुध, शुक्रजनित दोष में शिवपूजन से, गुरु चन्द्र जनित दोष में मन्त्र, यन्त्र, औषध आदि से, राहुज दोष में कन्यादान से, सूर्यजनित दोष में विष्णुपूजन से, केतुजनित दोष में गोदान से, मंगल एवं शनि के दोष में रुद्रीयजप से पुत्रप्राप्ति होती है। इसी प्रकार सर्वविद्यादोषापशमन के लिए भक्तिपूर्वक जो हरिवंशश्रवण करता है, उसे निश्चल सन्तान प्राप्त होती है।<sup>२५</sup>

इसी प्रकार भावप्रकाश में सन्तानप्राप्ति के निमित्त ग्रहजनितदोष निवारण के लिए कहा गया है कि यदि सन्तानबाधक हो तो हरिवंश श्रवण से, राहु बाधक हो तो कन्यादान से, केतु बाधाकारक हो तो कपिला गायदान करने से और शनि, मंगल संतानबाधाकारक हों तो रुद्राभिषेक करने से सन्तान की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार चन्द्रमा संतानबाधक हो तो देवता दोष, सूर्य और बृहस्पति बाधक हो तो पितृदोष, मंगलबाधक हो तो यज्ञ दोष और बुध बाधक हो तो भूत (प्रेत) दोष से सन्तान की उत्पत्ति में बाधा होती है। इसी प्रकार शुक्र सन्तानबाधक हो तो वीर्य दोष, शनि हो तो रज दोष और राहुकेतु बाधक हो तो गर्भनष्ट दोष से सन्तान नहीं होती है। इन दोषों के निमित्त देवता दोष में भूमिदान, गृहदान और देवता का पूजन करने से और पितृ दोष में

विशेषतः नारायण बलि, गयाश्राद्ध आदि करने से सन्तान होती है। यक्ष दोष में यत्पूर्वक यक्ष की स्थापना, पूजन और विशेष कर विष्णु का पूजन करना चाहिए।<sup>66</sup> भावप्रकाश, ५/३१-३५

## २. सन्तान गोपाल मन्त्र

क्लीं श्रीं ह्रीं जीं भूर्भुवः स्वः देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि में तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः स्वः भुवः भूः जीं ह्रीं श्रीं क्लीं ॥

इस चौवन अक्षरीय मन्त्र के यदि कोई सवालक्ष जप विधिवत् करे, तो उसे उस नटखट मुरली मनोहर की कृपा से बालगोविन्द अवश्य प्राप्त होगा। इस मंत्र में बड़ी शक्ति है। हमने अनेक व्यक्तियों को इससे लाभ होते देखा है। विधिवत् किया हुआ जप जब सज्जन हो, तो मंत्र के दशांश तुल्य तर्पण, मार्जन, हवन एवं ब्राह्मण भोजन किया जाना चाहिए। इस मंत्र से अवश्य लाभ होगा। ऐसी हमारी आशा है। भावप्रकाशकर ने भी कहा है कि श्रीहरिवंशपुराण के श्रवण से अथवा श्री सूर्य भगवान् के व्रत से अथवा सन्तानगोपालमन्त्र के निरन्तर जप से मनुष्य को निश्चय सन्तान का लाभ होता है।<sup>67</sup> भावप्रकाश, ५/१०

## ३. नमो भगवते जगत्प्रसूत्ये नमः।

इस मंत्र की विधिवत् भगवान् बालमुकुन्द नटवर नागर कन्हैया की पूजा-अर्चना करके सवालक्ष यदि जप किये जाएँ, तो अवश्य सन्तान फल की प्राप्ति होगी।

## ४. नमो शक्तिरूपाय मम् गृहे पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा।

इस मंत्र के सवालक्ष जप शुभ मुहूर्त में आरम्भ करके किये जाने चाहिए। तथा जप की समाप्ति पर नव कन्याओं को भोजन कराना चाहिए।

## सन्दर्भ :

1. आचार्य भवभूति ने उत्तररामचरित नामक नाटक में इस तथ्य को पुरजोर तरीके से प्रदर्शित किया है। तमसा के माध्यम से आचार्य ने इसी कथन को पुष्टि करते हुए कहलवाया है कि “ किमत्रोच्यते? प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य। परं चैतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः। अन्तःकरणतत्त्वस्य दस्युः स्नेहसंश्रयात्। आनन्दग्रन्थिकोऽयमपत्यमिति बध्यते ॥” उत्तररामचरित्र, आचार्य भवभूति, ३/१७
2. ज्योतिष के ग्रन्थों में इसका परिचय प्राप्त होता है। बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, १७/४-६
3. जातकपारिजात, १३/२३
4. चरकसंहिता-द्वितीय भाग, योनिव्यापचिकित्सितमध्याय, अध्याय ३०, श्लोक ७-३७, पृष्ठ ८४०-८४६, चौज्जाव्य भारती अकादमी, वाराणसी, १९९८
5. चरकसंहिता-द्वितीय भाग, योनिव्यापचिकित्सितमध्याय, अध्याय ३०, श्लोक ७-८, पृष्ठ ८४०-८४६, चौज्जाव्य भारती अकादमी, वाराणसी, १९९८
6. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, भावविवेचनाध्याय, १२/६
7. जातकपारिजात, पंचमषष्ठभावफलाध्याय, १३/९
8. जातकपारिजात, ग्रहनामस्वरूपगुणभेदाध्याय, २/२८
9. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, राशिशीलाध्याय, ५/४
10. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र अध्याय ७४, फलदीपिका, अध्याय १२
11. बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, अध्याय ७४, फलदीपिका, १२/२०-२२

12. फलदीपिका, १२/२३
13. फलदीपिका, १२/२०-२२
14. जातकपारिजात १३/१२
15. जातकपारिजात १३/१५
16. स्थानहानि करो जीवः।
17. जातकपारिजात १३/२०
18. जातकपारिजात, १३/८
19. सारावली, ३४/४१
20. फलदीपिका, १२/२
21. फलदीपिका, १२/२
22. फलदीपिका, १२/२
23. फलदीपिका, १२/२
24. फलदीपिका, १२/२
25. सारावली, ३४/४०
26. फलदीपिका, १२/१, सारावली, ३४/२५, जातकपारिजात, अथपुत्रविचारः, १३/८
27. फलदीपिका, १२/१
28. फलदीपिका, १२/१
29. फलदीपिका, १२/१
30. जातकपारिजात १३/१४
31. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, १७/२
32. जातकपारिजात १३/११
33. जातकपारिजात १३/१६, १७, १९
34. जातकपारिजात, १३/१०
35. सारावली, ३४/२६
36. जातकपारिजात, १३/९
37. फलदीपिका १२/१०
38. फलदीपिका १२/११
39. भावप्रकाश ५
40. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, १७/१३
41. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, १७/२४
42. सारावली, ३४/३७
43. भावप्रकाश, ५/१२-१३
44. भावप्रकाश, ५/१८
45. भावप्रकाश, ५/१९
46. भावप्रकाश, ५/२७
47. भावप्रकाश, ५/३३
48. भावप्रकाश, ५/२९
49. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, १७/४-६
50. भावप्रकाश, ५/६
51. भावप्रकाश, ५/७
52. फलदीपिका, १२/१०
53. भावप्रकाश, ५/१५

54. भावप्रकाश, ५/१९
55. भावप्रकाश, ५/२२
56. फलदीपिका, १२/१०
57. पंचस्वरा, बालारिष्टविचारः, श्लोक १, पृष्ठ १५९
58. पंचस्वरा, बालारिष्टविचारः, श्लोक ३, पृष्ठ १६०
59. पंचस्वरा, बालारिष्टविचारः, श्लोक ४, पृष्ठ १६०
60. भावप्रकाश, ५/११
61. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, १७/२१
62. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, १७/२२
63. भावप्रकाश, अथ दुष्टग्रहाणां दानजपादिकथनाध्यायः, १२/१
64. भावप्रकाश, ५/३६
65. बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, १७/१०७-१०९

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- १- फलदीपिका, मंत्रेश्वर, व्या.-गोपेशकुमार ओझा, मोतीलालबनारसीदास, वाराणसी, २०१०
- २- सारावली, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी
- ३- जातकपरिजात, वैद्यनाथ, व्या.- पं. कपिलेश्वर चौधरी, पं. मातृप्रसाद पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २०१३
- ४- बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, पाराशरमुनि, व्या.- देवचन्द्र झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.सं.-२०६०
- ५- चरकसंहिता-द्वितीय भाग, आचार्य चरक, योनिव्यापचिकित्सतमध्याय, अध्याय ३०, श्लोक ७-३७, पृष्ठ ८४०-८४६, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, १९९८
- ६- उत्तररामचरित, डा. रमाकान्त त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण- २००७
- ७- भावप्रकाश, जीवनाथ दैवज्ञ, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.सं.-२०५५
- ८- पंचस्वरा, श्री प्रजापति दास, सं.- नागेन्द्र पाण्डेय, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९९७-९८

## पूर्वत्रासिद्धं सूत्रविचारः

वैद्यसुब्रह्मण्यः

पूर्वत्रासिद्धम् ( ८.२.१ ) इतीदं सूत्रम् अष्टमाध्यायस्य द्वितीयस्मिन् पादे आदिमं भवति । पूर्वं प्रति परम् असिद्धं स्यात् इति एतत्सूत्रार्थः । इदं सूत्रं पाणिनीयशब्दानुशासने अतीव महत्वपूर्णं सूत्रं भवति । अदः सूत्रमेव पाणिनीयसूत्राणां पौर्वापर्यस्य महत्त्वं ख्यापयति । सोऽयं विषयः अत्र प्रबन्धे स्पष्टीभविष्यति ।

### विषयवस्तुपरिचयः -

एकस्मिन् लक्ष्ये युगपत् प्रवृत्तानाम् अनेकेषां सूत्राणां विरोधपरिहाराय सूत्रमिदमारब्धं वर्तते पाणिनिना । सोऽपि विरोधपरिहारः सूत्राणाम् उपदेशस्थानमाधारीकृत्य परिह्रियते । अत एव पाणिनीयसूत्राणां पौर्वापर्यस्य महत्त्वं वर्तते । संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च । अतिदेशोऽधिकारश्च सूत्रं षड्विधं स्मृतम् ॥<sup>१</sup> इत्यभ्युक्तोक्तरीत्या षट्प्रकारकेषु सूत्रेषु इदं सूत्रम् अधिकारसूत्रं भवति । अस्य अधिकारत्वानङ्गीकारे यत्रोपदिष्टमिदं सूत्रं ततः उत्तरत्रापि अस्य अप्रवृत्तौ पूर्वं प्रति परम् असिद्धं स्यात् इत्यर्थाभावात् गोधुड्मान् इत्यादिलक्ष्यासिद्धिरूपदोषः । अस्य अधिकारत्वे तु नायं दोषः । किञ्च सूत्रेऽस्मिन् पूर्वस्मिन् कार्ये कर्तव्ये परं कार्यमसिद्धं स्यात् इत्यर्थः वक्तव्यो वा पूर्वस्मिन् शास्त्रे कर्तव्ये परं शास्त्रम् असिद्धं भवति इत्यर्थः वक्तव्यो वा इति संशयः । अत्र कार्यासिद्धत्वापक्षाश्रयणे अमू, अमी इत्यादीनां लक्ष्यानामसिद्धिः स्यात् इति शास्त्रासिद्धत्वपक्ष एवात्र आश्रियते । तदेतत् सर्वमत्र प्रबन्धे निरूप्यते ।

### विषयवस्तुबिन्दवः -

१. पूर्वत्रासिद्धम् सूत्रार्थः ।
  - १.१. सूत्रार्थसिद्धिः ।
  - १.२. उदाहरणप्रदर्शनम् ।
    - १.२.१. सपादसमाध्यायीं प्रति त्रिपाद्याः असिद्धत्वे उदाहरणम् ।
    - १.२.२. त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परमसिद्धम् इत्यत्र उदाहरणम् ।
२. अधिकारत्वव्यवस्थापनम् ।
  - २.१. अधिकारलक्षणम् ।
  - २.२. अस्याधिकारत्वानङ्गीकारे प्रसक्तदोषः ।
  - २.३. अस्याधिकारत्वाङ्गीकारे तद्दोषपरिहारः
३. शास्त्रासिद्धत्वव्यवस्थापनम् ।
  - ३.१. कार्यासिद्धत्वपक्षाश्रयणे प्रसक्तदोषः ।
    - ३.१.१. कार्यासिद्धत्वपक्षे प्रथमदोषाभिधानम् ।
    - ३.१.२. कार्यासिद्धत्वपक्षे द्वितीयदोषाभिधानम् ।
  - ३.२. तद्दोषवारणाय शास्त्रासिद्धत्वपक्षाश्रयणम् ।

विषयवस्तु -

### १.१. पूर्वत्रासिद्धम् सूत्रार्थः -

पाणिनिना अष्टाध्यायी इति ग्रन्थः विरचितः इति सर्वैः विदितमेव । नाम्नैव ज्ञायते तस्मिन् ग्रन्थे अष्टौ अध्यायाः वर्तन्ते इति । प्रत्यध्यायं चतुर्भिः पादैः विभक्तमस्ति । तत्र पूर्वत्रासिद्धम् ( ८.२.१ ) इतीदं सूत्रम् अष्टमाध्यायस्य द्वितीयस्मिन् पादे आदिमं भवति । इदं सूत्रमेव अष्टाध्याय्यां प्रत्येकं सूत्राणां पौर्वापर्यस्य महत्त्वं ख्यापयति । पूर्वत्र असिद्धम् इति पदच्छेदः । पूर्वत्र इति त्रलन्तमव्ययम्<sup>१</sup> । पूर्वस्मिन् इति सतिसप्तम्यन्तात् त्रलप्रत्ययो बोध्यः । एवञ्च पूर्वस्मिन् सति असिद्धं स्यात् इति अर्थः सम्पन्नः । पूर्वशब्दार्थसापेक्षत्वात् परमित्युपस्थितं भवति । तेन पूर्वस्मिन् कर्तव्ये परमसिद्धं भवति इति सूत्रार्थः लब्धः । तथा च अस्य सूत्रस्य अष्टमाध्याये द्वितीये पादे आदावेव उपदेशात् अत्र सूत्रे पूर्वशब्देन सप्त अध्यायाः, अष्टमाध्यायस्य एकः पादः च ग्राह्यः तावतः भागस्य एतत्सूत्रात् पूर्वत्रोपदेशात् । परशब्देन अष्टमाध्यायस्य अवशिष्टाः द्वितीयतृतीय-तुर्यपादाः ग्राह्याः, तावतः भागस्य एतत्सूत्रात् परत्रोपदेशात् । सप्तानाम् अध्यायानां समाहारः सप्ताध्यायी पादेन सहिता सपादा, सपादा चासौ सप्ताध्यायी च सपादसप्ताध्यायी । त्रयाणां पादानां समाहारः त्रिपादी । एवञ्च सपादसप्ताध्यायी प्रति त्रिपादी असिद्धा इति सूत्रार्थः सम्पन्नः । इदम् अधिकारसूत्रञ्च भवति, तेन अस्य सूत्रस्य अग्रेऽपि अनुवृत्तिः भवति । इदं सूत्रम् अष्टमाध्यायस्य आन्तमनुवर्तते । उत्तरत्र उत्तरत्र अनुवृत्तौ प्रत्येकेन सूत्रेण अस्य सम्बन्धे त्रिपाद्यामपि पूर्वशास्त्रदृष्ट्या परं शास्त्रमसिद्धं भवति इत्यपि अर्थः लभ्यते अस्य अधिकारत्वात् ।

### १.२. उदाहरणप्रदर्शनम् -

#### १.२.१. सपादसप्ताध्यायी प्रति त्रिपाद्याः असिद्धत्वे उदाहरणम् -

मनस् रथः इति स्थिते सस्य ससजुषो रुः<sup>३</sup> इति सूत्रेण रुत्वे कृते, मनस् रथः इति जाते हशि च<sup>४</sup> ( ६.१.११४ ) इति सूत्रेण हशि परे रेफस्य उच्चं प्राप्नोति, रो रि<sup>५</sup> ( ८.३.११४ ) इति सूत्रेण रेफे परे रेफस्य लोपः प्राप्नोति । हशि च इत्यस्य सपादसप्ताध्यायीस्थत्वात् रो रि इत्यस्य त्रैपादिकत्वात् पूर्वत्रासिद्धम् इति सूत्रेण उच्चविधायकशास्त्रं प्रति रेफलोप- विधायकशास्त्रस्य असिद्धत्वात् रो रि इत् सूत्रं बाधित्वा रेफस्य उच्चे कृते मन उ रथः इति जाते ततः परं गुणे च कृते मनोरथः इति रूपं सम्पन्नम् ।

#### १.२.२. त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परमसिद्धम् इत्यत्र उदाहरणम् -

किम् उ उक्तम् इत्यत्र मयः परस्य उजः वो वा स्यात् इत्यर्थकेन मय उजो वो वा<sup>६</sup> ( ८.३.३३ ) इति सूत्रेण मयः परस्य उजः वकारादेशे किम् व् उक्तम् इति जाते मान्तस्य पदस्य अनुस्वारः स्यात् हलि इत्यर्थकेन मोऽनुस्वारः<sup>७</sup> ( ८.३.२३ ) इति सूत्रेण हल्परकत्वात् मकारस्य अनुस्वारः प्राप्तः । अनुस्वारे कृते तु अनिष्टं स्यात् । परन्तु त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परशास्त्रस्यासिद्धत्वात् मोऽनुस्वारः ( ८.३.२३ ) इति सूत्रदृष्ट्या मय उजो वो वा ( ८.३.३३ ) इति शास्त्रस्यासिद्धत्वात् तत्र वकारस्य असिद्धत्वात् हल्परकत्वाभावात् मकारस्य अनुस्वारः वार्यते । अनिष्टं च वार्यते । किम् व् उक्तम् इति इष्टं सिद्ध्यति । एतदपि अस्य अधिकारत्वे फलम् ।

### २. अस्याधिकारत्वव्यवस्थापनम् -

### २.१. अधिकारलक्षणम् -

किं नाम अधिकारसूत्रं ? स्वस्थले लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थबोधाजनकत्वे सति स्वोत्तरवर्तिविधिसूत्रैः सह एकवाक्यतापन्नत्वमधिकारत्वम्<sup>८</sup> इति अधिकारस्य लक्षणम् । यत्र सूत्रमुपदिष्टं तत्र विद्यमानं सत् लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थबोधाजनकं सत् स्वस्मात् उत्तरत्र विद्यमानैः विधिसूत्रैः सह मिलित्वा एकार्थबोधकं सूत्रम् अधिकारसूत्रमिति कथ्यते । स्वस्थले लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थबोधाजनकत्वम् इति प्रथमदलाभावे स्वोत्तरवर्तिविधिसूत्रैः सह एकवाक्यतापन्नत्वम् इत्येतावन्मात्रोक्तौ विधिसूत्रेषु अतिव्याप्तिः । उदाहरणार्थम् अतो दीर्घो यजि<sup>९</sup> इति सूत्रं सुपि च<sup>१०</sup> इति विधिसूत्रेण सह संबन्ध एकार्थ बोधयति । अतः अतो दीर्घो यजि इत्येतादृशेषु विधिसूत्रेषु अतिव्याप्तिः । स्वस्थले लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थबोधाजनकत्वम् इत्येतावन्मात्रोक्तौ स्वोत्तरवर्तिविधिसूत्रैः सह एकवाक्यतापन्नत्वम् इति द्वितीयदलाभावे संज्ञासूत्रेष्वतिव्याप्तिः । यतः वृद्धिरादैच् इत्यादीनां संज्ञासूत्राणां स्वस्थले लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थबोधाजनकत्वात् तत्रातिव्याप्तिः । तथा च स्वस्थले लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थबोधाजनकत्वे सति स्वोत्तरवर्तिविधिसूत्रैः सह एकवाक्यतापन्नत्वमधिकारत्वम् इत्येव वक्तव्यम् । पूर्वत्रासिद्धम् इति सूत्रे चास्य लक्षणस्य समन्वयः । स्वस्थले लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थबोधाजनकत्वं न वर्तते तस्य । स्वोत्तरवर्तिविधिसूत्रैः सह संबन्ध पूर्व प्रति परं शास्त्रम् असिद्धं स्यात् इत्यर्थबोधनेन लक्ष्यसंस्कारकत्वं च वर्तते तस्य ।

### २.२. अस्याधिकारत्वानङ्गीकारे प्रसक्तदोषः -

अस्य अधिकारत्वानङ्गीकारे “गोधुङ्मान्” इति रूपं न स्यात् । गां दोमिध इति गोधुक् । गोधुक् अस्य अस्ति इत्यर्थे गोदुहशब्दात् मतुप्प्रत्यये कृते गोधुङ्मान् इति रूपेण भाव्यम् । एतदूपसिद्धये अपेक्षितानां सूत्राणां विवरणम् - दादेर्धातोर्धः<sup>११</sup> ( ८.२.३२ ) एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्थ्वोः<sup>१२</sup> ( ८.२.३७ ) , झलां जशोऽन्ते<sup>१३</sup> ( ८.२.३९ ) , यरोऽनुनासिके अनुनासिको वा<sup>१४</sup> ( ८.४.४५ ) इति सूत्रे पठितं वार्तिकं प्रत्यये भाषायां नित्यम् इति । दादेर्धातोर्धः इति सूत्रेण दकारादेः धातोः हस्य घत्वं विधीयते । धातोरेवयवः यः एकाञ् झषन्तः तदवयवस्य बशः भष् स्यात् सकारे ध्वशब्दे च पदान्ते च इति एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्थ्वोः ( ८.२.३७ ) इति सूत्रस्यार्थः । झलां जशोऽन्ते इति सूत्रेण जश्त्वं विधीयते । प्रत्यये भाषायां नित्यम् इति वार्तिकेण अनुनासिकादिप्रत्यये परे यरः अनुनासिकः नित्यं विधीयते । गोदुह मत् इत्यवस्थायां घत्वजश्त्वयोः प्राप्तयोः अपादत्वात् आदौ घत्वे गोदुग् मत् इति जाते जश्त्वभष्भावयोः प्राप्तयोः परत्वात् अन्तरङ्गत्वात् आदौ जश्त्वे गोदुग् मत् इति जाते ततः पश्चात् अनुनासिकादेशे गोदुङ्मान् इति रूपं स्यात् । गोदुग् मत् इत्यवस्थायां झषन्तत्वाभावात् बशः दकारस्य भष्भावो न स्यात् गोधुङ्मान् इति रूपं न स्यात् ।

### २.३. अस्य अधिकारत्वाङ्गीकारे तद्दोषपरिहारः -

पूर्वत्रासिद्धम् इत्यस्य अधिकारत्वे त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रम् असिद्धम् इत्यर्थः लभ्यते । तेन गोदुह मत् इत्यवस्थायां घत्वजश्त्वयोः प्राप्तयोः अपादत्वात् आदौ घत्वे गोदुग् मत् इति जाते जश्त्वभष्भावयोः प्राप्तयोः, त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परस्यासिद्धत्वात् भष्भावस्य पूर्वत्वात् तद्दृष्ट्या जश्त्वस्यासिद्धत्वात् जश्त्वस्य बाधात् झषन्तत्वानपायात् आदौ भष्भावः सूपपन्नः । ततः परं जश्त्वानुनासिकयोः कृतयोः गोधुङ्मान् इति रूपसिद्धौ न काचित् क्षतिः । अतः इदम् अधिकारसूत्रम् इति अङ्गीकर्तव्यमेव ।

### ३. शास्त्रासिद्धत्वव्यवस्थापनम् –

अत्र अपरोऽपि विचारः प्रस्तूयते । पूर्वं प्रति परमसिद्धम् इत्यस्य सूत्रस्यार्थः उच्यते । किं पूर्वशास्त्रं प्रति परशास्त्रम् असिद्धम् इति वक्तव्यम् वा उत पूर्वकार्यं प्रति परकार्यमसिद्धम् इति वक्तव्यम् वा इति प्रश्नः अत्र उदितः । एतदेव शास्त्रासिद्धपक्षः, कार्यासिद्धपक्षः इति कथ्यते ।

#### ३.१. कार्यासिद्धत्वपक्षे प्रसक्तदोषः –

##### ३.१.१. कार्यासिद्धत्वपक्षे प्रथमदोषाभिधानम् –

कार्यासिद्धत्वपक्षे पूर्वकार्यं प्रति परकार्यमसिद्धम् इति वक्तव्यम् इत्यर्थात् सिद्धे एव असिद्धत्वात्प्राप्तिः, पूर्वकार्यं प्रति परकार्यस्य असिद्धत्वे वक्तव्ये आदौ लक्ष्ये परकार्यस्य प्रवृत्तिः वक्तव्या । एवं सति मनोरथः इति रूपं न स्यात् । यतः मनस् रथः इति स्थिते सस्य ससजुषो रुः इति सूत्रेण रुत्वे कृते, मनस् रथः इति जाते ह्रिश्चि च ( ६.१.११४ ) इति सूत्रेण ह्रिश्चि परे रेफस्य उत्वं प्राप्नोति, रो रि ( ८.३.१४ ) इति सूत्रेण रेफे परे रेफस्य लोपः प्राप्नोति । उत्वकार्यं प्रति रेफलोपस्य असिद्धत्वं वक्तव्यं चेत् आदौ रेफलोपस्य प्रवृत्तिर्वक्तव्या । एवं चादौ रेफलोपे कृत् मन रथ इति जाते रेफलोपस्यासिद्धत्वेऽपि “देवदत्तस्य हन्तरि हते सति न देवदत्तस्य उन्मज्जनम्” इति न्यायेन रेफलोपेन अपहृतस्य रेफस्य पुनः तत्रादर्शनात् न तत्र उत्वस्य पुनः प्रसक्तिः । एवं सति मनोरथः इति रूपं न सिद्ध्येत् । किञ्च “पूर्वत्रासिद्धे नास्ति विप्रतिषेधोऽभावादुत्तरस्य” इति सिद्धान्तस्य भङ्गः स्यात् ।

##### ३.१.२. कार्यासिद्धत्वपक्षे द्वितीयदोषाभिधानम् –

कार्यासिद्धत्वपक्षे द्वितीयं दोषमभिधते ग्रन्थकारः । यतः प्रथमदोषे किञ्चिदस्वारस्यमस्ति । तच्च “अभावाभावः प्रतियोगिस्वरूपः” इत्यतः रेफलोपे तस्य असिद्धत्वाश्रयणे अर्थात् रेफभावाभावः रेफस्वरूपः भवति इति कारणात् तत्र रेफस्य उपस्थित्या तत्र उत्वप्रसक्तेः न किञ्चिद् बाधकं दृश्यते, अतः तत्र उत्वे कृते मनोरथः इति रूपसिद्धिः भवति । अतः कार्यासिद्धत्वपक्षाश्रयणे मनोरथः इत्यत्र न दोषः स्यात् इति आपत्तौ द्वितीयं दोषं वक्तुमारभते । स च दोषः – अमू, अमी इति रूपं न स्यात् इति । अदस्यत्वात् औप्रत्यये कृते अदस् औ इति स्थिते, त्यदाद्यत्वे, पररूपे, अद औ इति जाते, वृद्धौ अदौ इति जाते, अदसोऽसेर्दादु दो मः इति सूत्रेण मुत्वे अमू इति रूपं सम्पन्नम् । एवम् अदस् शब्दात् जसि, त्यदाद्यत्वे, पररूपे, जसः शोभावे, अद ई इति जाते, गुणे अदे इति जाते, एत ईद् बहुवचने इति सूत्रेण मीत्वे अमी इति रूपं सिद्ध्यति । अत्र पूर्वोक्तोदाहरणद्वयेऽपि, त्यदाद्यत्वेऽपि अद अ औ, अद अ अस् इति च स्थिते, पररूपं मुत्वमीत्वे च प्राप्ते । मुत्वमीत्वविधायकं शास्त्रं त्रैपादिकम् । पररूपं सपादसप्ताध्यायीस्थम् । पररूपदृष्ट्या मुत्वमीत्वयोः असिद्धत्वं वक्तव्यं चेत्, कार्यासिद्धत्वपक्षे पूर्वं मुत्वमीत्वयोः प्रवृत्तिः वाच्या । अतः मुत्वमीत्वयोः आदौ प्रवृत्तौ अमू अ औ, अमी अ अस् इति जाते, ततः परं पररूपदृष्ट्या मुत्वमीत्वयोः असिद्धत्वेऽपि “देवदत्तस्य हन्तरि हते सति न देवदत्तस्य उन्मज्जनम्” इति न्यायेन मुत्वमीत्वाभ्यामपहृतस्य दत्वस्य तत्र असत्त्वात्, पररूपाप्रसङ्गः इति अमू, अमी इति रूपं न स्यात् । अतः कार्यासिद्धत्वपक्षे अमू, अमी इति रूपासिद्ध्या पक्षेऽयं त्याज्यः । एतद्दोषपरिहाराय शास्त्रासिद्धत्वपक्ष एव आश्रयणीयः ।

##### ३.२. तद्दोषवारणाय शास्त्रासिद्धत्वपक्षाश्रयणम् –

पक्षेऽस्मिन् पूर्वशास्त्रं प्रति परशास्त्रमसिद्धं भवति इति अर्थः वक्तव्यः अस्य सूत्रस्य । एवं सति पक्षेऽस्मिन् परशास्त्रस्य आदौ प्रवृत्तावपि लक्ष्ये शास्त्रकृतसंस्कारः न दृश्यते । तेन पूर्वशास्त्रदृष्ट्या परशास्त्रासिद्धत्वेऽपि, त्यदाद्यत्वेऽपि अद अ औ, अद अ अस् इति च स्थिते, अतो गुणे इति पूर्वशास्त्रम्, अदसोऽसेर्दादु दो मः<sup>१६</sup>, एत ईद् बहुवचने<sup>१७</sup> इति परशास्त्रं प्रवृत्तम् । पररूपविधायकशास्त्रदृष्ट्या मुत्वमीत्वविधायकशास्त्रस्य असिद्धत्वेऽपि तत्र अद अ औ, अद अ अस् इत्यवस्थायाः सत्त्वात् पररूपप्रवृत्तौ न किञ्चिद् बाधकम् । एवम् आदौ पररूपे कृते अद औ, अद अस् इति जाते, वृद्धिशीभावगुणानां प्रवृत्त्युत्तरं मुत्वमीत्वयोः प्रवृत्तौ अमू, अमी इति इष्टं रूपं सिद्ध्यति इति शास्त्रासिद्धत्वपक्षेऽस्मिन् न कश्चन दोषः इति अयं पक्ष एव आश्रयणीयः ।

न मु ने<sup>१८</sup> इति हि सूत्रम् । नाभावे कर्तव्ये कृते च मुत्वम् नासिद्धम् इति अस्य सूत्रस्यार्थः । अदस्यत्वात् तृतीयैकवचने त्यदाद्यत्वे पररूपे च कृते अद आ इति स्थिते, नाभावं प्रति मुत्वं निमित्तं भवति इत्यतः आदौ मुत्वस्य प्रवृत्तिः भवति, तदुत्तरं तन्निमित्तकः नाभावः इति स्थितिः । एवं सत्यपि अमु आ इति स्थिते, नाभावविधायकशास्त्रदृष्ट्या मुत्वविधायकशास्त्रस्य त्रैपादिकस्य असिद्धत्वात् धिसंज्ञायाः आभावात् नाभावो न स्यात् इति नाभावे कर्तव्ये मुत्वस्य असिद्धत्वं निषिध्यते अनेन सूत्रेण । एवं मुत्वस्य असिद्धत्वे निषिद्धे धिसंज्ञायाः सत्त्वात् नाभावप्रवृत्तौ न काचित् क्षतिः । ततः परं नाभावे कृते अमु ना इति जाते सुपि च सूत्रदृष्ट्या च मुत्वस्यासिद्धत्वात् अद ना इति दर्शनात् सुपि च इति दीर्घः स्यात् इति नाभावे कृतेऽपि मुत्वस्य असिद्धत्वं निषिध्यते अनेन सूत्रेण । तेन मुत्वस्य तत्र सत्त्वात् अदन्तत्वाभावात् न तत्र दीर्घः । एतदेवास्य सूत्रारम्भस्य प्रयोजनम् ।

इदं सूत्रमेव “देवदत्तस्य हन्तरि हते सति न देवदत्तस्य उन्मज्जनम्” इति न्यायस्य अनित्यत्वज्ञापनद्वारा कार्यासिद्धत्वपक्षे प्रमाणम् । तद्धि अदस्यत्वात् तृतीयैकवचने त्यदाद्यत्वे कृते, अद अ आ इति स्थिते, पररूपमुत्वयोः प्राप्तौ कार्यासिद्धत्वपक्षे आदौ मुत्वे, अमु अ आ इति जाते, मुत्वस्य असिद्धत्वनिषेधेऽपि आङ् सकारस्थानिकेन अकारेण व्यवधानात् नाभावो न स्यादिति न मु ने इति सूत्रेण मुत्वस्य असिद्धत्वनिषेधः व्यर्थः । व्यर्थः सन् “देवदत्तस्य हन्तरि हते सति न देवदत्तस्य उन्मज्जनम्” इति न्यायस्य अनित्यत्वं ज्ञापयति इति चेत्, तेन शास्त्रासिद्धत्वपक्षाश्रयणमेव युक्तम् । “तौ सत्” इत्यादिनिर्देशेनापि अस्य न्यायस्य अनित्यत्वं ज्ञाप्यते इति न च वाच्यम्, “हते देवदत्ते तद्धन्तरि हतेऽपि नोन्मज्जनं, हतत्वारोपे तु सुतरां । हन्तुमुद्यतस्य हनने तु उज्जीवनमस्त्येव” इति न्यायस्य संपूर्णं स्वरूपम् । तौ इत्यादिनिर्देशेषु वृद्धिं हन्तुमुद्यतस्य पूर्वसवर्णदीर्घस्य हननात् पुनः वृद्धिः भवति इति नेदं दृष्टान्तं “हते देवदत्ते तद्धन्तरि हतेऽपि नोन्मज्जनं” इत्यंशस्य विषयः । अतः पूर्वत्रासिद्धम् इति सूत्रे शास्त्रासिद्धत्वपक्ष एव उचितः इति सिद्धान्तः ।

#### सन्दर्भाः –

१. लघुशब्देन्दुशेखरः नागेशभट्टविरचितः, श्रीपादसुब्रह्मण्यविरचितबालबोधिनीसंवलितः पञ्चसन्ध्यन्ते भागे प्रस्तावनायाम् उपलभ्यमानं पद्यम् ।
२. तसिलादिष्वाकृत्वसुचः इति सूत्रेण त्रलन्तस्य अव्ययसंज्ञा ।
३. पदान्तस्य सस्य सजुषाब्दस्य च रुः स्यात् ।
४. अप्लुतादतः परस्य रोः उः स्याद्दृशि ।

५. रेफस्य रेफे परे लोपः स्यात् ।
६. मयः परस्य उञः वो वा स्यात् अचि ।
७. मान्तस्य पदस्य अनुस्वारः स्याद्धलि ।
८. सिद्धान्तकौमुदाव्याख्यायां बालमनोरमायां पूर्वत्रासिद्धम् सूत्रे दृश्यमानं लक्षणम् ।
९. अदन्तस्याङ्गस्य दीर्घः स्याद्यजादौ सार्वधातुके परे ।
१०. यजादौ सुपि परे अतोऽङ्गस्य दीर्घः स्यात् ।
११. उपदेशे दादेर्धातोः हस्य घः स्यात् झलि पदान्ते च ।
१२. धातोरवयवो य एकाञ् झपन्तः तदवयवस्य बशः स्थाने भष् स्यात् सकारे ध्वशब्दे पदान्ते च ।
१३. पदान्ते झलां जशः स्युः ।
१४. यरः पदान्तस्य अनुनासिके परेऽनुनासिको वा स्यात् ।
१५. शब्दरत्नः भट्टोजिदीक्षितविरचितप्रौढमनोरमाव्याख्या, पूर्वत्रासिद्धम् इति सूत्रे प्रस्तुतः न्यायः, शब्दरत्नभैरवी-भावप्रकाशसरलाव्याख्याभिः संवलितः, चौखम्भा संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित तृतीयसंस्करणं २००३, ऐ.एस्.बि.एन्. ८१-८६९३७-४८-X ।
१६. अदसोऽसान्तस्य दात्परस्य उदूतौ स्तः दस्य मश्च ।
१७. अदसः दात्परस्य एत ईत् स्यात् दस्य च मः बह्वर्शोक्तौ ।
१८. नाभावे कर्तव्ये कृते च मूभावो नासिद्धः स्यात् ।

#### सन्दर्भग्रन्थसूची –

१. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी प्रथमभागः, भट्टोजिदीक्षितविरचिता, बालमनोरमातत्त्वबोधिनीव्याख्याद्वयोपेता, गिरिधरशर्मणा परमेश्वरानन्दशर्मणा च संपादिता, मोतालाल बनारसी दास द्वार प्रकाशित २००४, ऐ.एस्.बि.एन्. ८१-२०८-२३४१-९।
२. प्रौढमनोरमा भट्टोजिदीक्षितविरचिता, शब्दरत्नभैरवीभावप्रकाशसरलाव्याख्याभिः संवलितः, चौखम्भा संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित तृतीयसंस्करणं २००३, ऐ.एस्.बि.एन्. ८१-८६९३७-४८-X ।
३. लघुशब्देन्दुशेखरः नागेशभट्टविरचितः, श्रीपादसत्यानारायणाचार्यविरचितबालबोधिनीसंवलितः पञ्चसन्ध्यन्तः भागः, तिरुपतिस्थ राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठेन प्रकाशितः २००१ ।
४. लघुशब्देन्दुशेखरः नागेशभट्टविरचितः चन्द्रिकाव्याख्यायुतः, प्रथमभागः, चौखम्भा संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित तृतीयसंस्करणं २००१, ऐ.एस्.बि.एन्. ८१-८६९३७-३३-1 ।
५. काशिकावृत्तिः जयादित्यवामनविरचिता, न्यासपदमञ्जरीसहिता, रत्ना पब्लिकेशन्स द्वारा प्रकाशित १९८५।

## भवभूतेः मालतीमाधवे अलङ्कारध्वनेः परिशीलनम्

प्रणतिपण्डा

अस्यां हि जगत्सृष्टौ प्रजापतेर्ब्रह्मण इव वाङ्मयेऽस्मिन् काऽपि विशिष्टा सृष्टिः विलसति, सा च सृष्टिः कविसृष्टिः। तस्या कविसृष्टेः कर्ता स्वयं कविरेव भवति। ब्रह्मणः जगत्सृष्टौ यन्त्रोपलभ्यते तदपि कविसृष्टौ समुपलभ्यते। यतोहि काव्यरचनायां कविः अन्यपरतन्त्रो नैव भवति। अर्थात् विद्यमानस्य वस्तुतत्त्वस्य तथैव वर्णनं विदधाति। कूङ् शब्दे इति धातोः अत् इञ् 1 इति पाणिनीयानुशासनेन इञ् प्रत्यये कविशब्दोऽयं निष्पद्यते।

कविः नियतिकृतनियमरहितो भवति। ब्रह्मणः सृष्टौ ये षड्रसाः सन्ति ते सर्वेभ्यो नैव रोचन्ते। परन्तु कवेः सृष्टौ शृङ्गार-हास्य-करुणादयः नवरसाः सहृदयानां मनसि आह्लादं जनयन्ति। ब्रह्मसृष्टिस्तावत् सुख-दुःखसहिता वर्तते परन्तु कविसृष्टिस्तु केवलं ह्लादैकमयी भवति। तेन कवेः भारती सततं जयतीति मम्मटेनाऽपि काव्यप्रकाशस्य मङ्गलपद्ये अभिहितम्। प्रस्तुतेऽस्मिन् शोधप्रबन्धे महाकविभवभूतिप्रणीतमालतीमाधवनाटकेऽलङ्कारध्वनिविषये चर्चा प्रस्तोष्यते।

संस्कृतसाहित्ये महाकविभवभूतिः विशिष्टं स्थानं विभर्ति। महाकविरयं करुणरसस्य तरङ्गिणीमुवाह। मालतीमाधवम् एतस्य प्रसिद्धं नाटकम्। तत्र अलङ्कारध्वनिविषयकानि सन्ति बहूनि उदाहरणानि। आदौ तावत्ध्वनिविषये लिख्यते-

को नाम ध्वनिः तस्य भेदाश्च

ध्वनिशब्दस्य भिन्नभिन्नाभिप्रायेण यद्यपि सन्त्यनेकेऽर्थाः तथापि ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्यः आचार्यः आनन्दवर्धनः ध्वन्यालोके ध्वनिशब्दस्य आहत्य पञ्चार्थाः निरूपयामास। ध्वन्यालोके प्रथमोद्योते ध्वनिलक्षणनिरूपणे

“यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।

व्यङ्गः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सुरिभिः कथितः” । 12

इत्यनेन सुरिभिर्नाम वैयाकरणै इत्यभिप्रायः। यतोहि व्याकरणमूलत्वात् सर्वशास्त्राणाम्। ते वैयाकरणाः श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। आनन्दवर्धनदिशा तु ध्वनेः पञ्च अर्थास्सम्भवन्ति। ते यथा-

१. शब्दः २. अर्थः ३. व्यङ्ग्यार्थः ४. व्यञ्जनाव्यापारः ५. काव्यम् ।

एतेषां पञ्चार्थानां व्युत्पत्तिस्तावत् इत्थं प्रदर्शयितुं शक्यते।

१. ध्वनति ध्वनयति वा यः सः व्यञ्जकशब्दः ध्वनिः।
२. ध्वनति ध्वनयति वा यः सः व्यञ्जकोऽर्थः ध्वनेः।
३. ध्वन्यते इति ध्वनिः, अनेन व्यङ्ग्यार्थः।

४. ध्वन्यते अनेनति ध्वनिः-व्यञ्जनाव्यापारः।  
 ९. ध्वन्यते अस्मिन्निति ध्वनिः-काव्यम्।

### ध्वनेः वस्त्वलङ्काररसभेदेन त्रैविध्यम्

ध्वनिनिरूपणस्य आधारभूता तु व्यञ्जनावृत्तिरेव, तथा च व्यङ्ग्यार्थो व्यञ्जकौ शब्दाथौ च प्रकाशयतः इति पूर्वं व्यञ्जनाविवेचने विवेचितम्। अतश्च ध्वनिभेदचिन्तनमपि द्विधा विधास्यते व्यङ्ग्यार्थमाधृत्य व्यञ्जक (पदादि) माधृत्य च। ध्वनिः त्रैविध्यम्। यथा-

#### (क) वस्तुध्वनिः

अस्मिन् वर्गे तादृशानां काव्यानां सङ्ग्रहो मान्यो येषु लक्षणा-मूलकमभिधामूलकञ्च व्यङ्ग्यं वस्तु प्रधानीभूतं सद् विलसति। अभिधामूलकं व्यङ्ग्यं वस्तु च कचिच्छब्दशक्त्या कचिच्चार्यशक्त्या सहृदयानाह्लादयति।

#### (ख) अलङ्कारध्वनिः

वर्गेऽस्मिन् तेषां काव्यानां समावेशो भवति, यत्र अभिधामूलकस्य व्यङ्ग्यस्य अलङ्कारनिकरस्य प्राधान्यं स्यात्। अलङ्कारमूलकस्य व्यङ्ग्यार्थो भवति त्रिधा शब्दशक्तिमूलोऽर्थशक्तिमूल उभयशक्तिमूलश्चेति।

#### (ग) रस-ध्वनिः

अत्र रसपदेन नव रसाः शृङ्गारादयो, रसादयो वा गृह्यन्ते। रसादिषु रस-रसाभास-भाव-भावाभास-भावोदय-भावशान्ति-भावसन्धि-भावशबलता-नामकानि अष्ट तत्त्वानि गृह्यन्ते, येषु रसस्यैव प्राधान्यात् रस एव अन्येषामपि उपलक्षकः प्रतिनिधिभूतश्च। अत एव रसध्वनि-पदे प्रयुक्तो रसशब्दोऽन्येषामपि रसाभासादीनामुक्तानां बोधको मन्वत्यः। केचन च रसातिरिक्तानां स्पष्ट-प्रतिपत्त्यर्थं रसादिध्वनिरिति निगदन्ति।

अभिनवागुप्ताचार्यस्तु सर्वत्रापि रससत्तामूरीकुरुते। रसाभासादि-स्थलेषु वस्त्वलङ्कारध्वनिस्थलेषु वा पर्यवसिता परिणतिस्तु रसस्यैव यथा कथञ्चिद् आस्वाद्यते, अतो रसध्वनिरेव मुख्यो ध्वनिः, रस एव च काव्यात्मेति मन्यतेऽभिनवः।

यद्यप्यानन्दवर्धनेन मम्मटादिवत् ध्वनिभेदानामियत्ता प्रदर्शिता, तथापि तदीयवर्णनानुसारेण ध्वनेश्चतुर्दश भेदा एवावसीयन्ते, अविवक्षितवाच्यध्वनेश्चत्वारो भेदाः, विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनेश्च दशभेदा इति वर्तन्ते। वस्तुतस्तु ध्वनिकारो ध्वनिभेदानगणनीयानेव मत्वा भेदसङ्ख्याने मौनमाकलयति।

ध्वनिः प्राणभूता व्यञ्जना च कचिल्लक्षणा मूला, कचिदभिधामूला च भवति। अतो व्यञ्जनाविनिर्गलितो व्यङ्ग्यार्थोऽपि द्विविधो मतोऽविवक्षितवाच्यो विवक्षितवाच्यश्चेति। अत एव व्यङ्ग्यार्थभेदद्वयोदितं ध्वनेरपि भेदद्वयं जागर्ति।

१. अविवक्षितवाच्यो ध्वनिः। २. विवक्षितान्यपरवाच्यो ध्वनिः।

### मालतीमाधवस्य सामान्यपरिचयः

महाकवेः भवभूतेः कृतित्रयं साम्प्रतं सम्प्राप्यते (क) महावीरचरितम्, (ख) उत्तररामचरितम्, (ग) मालतीमाधवम्। तत्र प्रथमं नाटकं महावीरचरितमित्यालोचका अनुमिन्वन्ति। अयमेव हेतुः यत् यदा महावीरचरितस्य तीक्ष्णा समालोचना तत्कालोद्भवैः समालोचकैः सम्प्रस्तूता। भवभूतेः तेषां रूपकत्रयाणाम् मध्ये मालतीमाधवस्य सामान्यपरिचयं विधीयते।

### मालतीमाधवम्

दशभिर्दृष्टैः प्रणीतमिदमेकं विशालं प्रकरणम्। प्रकरणेऽस्मिन् कविकल्पनाप्रसूतयोर्मालतीमाधवयोः प्रेमाऽतिसुन्दरप्रकारेणावतार्य महाकविना वर्णितः। मालतामाधवश्चेत्युभावेकस्मिन् मदनोत्सवे सम्मिल्य परस्परमनुरागं कुरुतः। यौवने उन्मत्तस्य प्रेम्णोऽत्र प्रगाढं निदर्शनं विहितम्। माधवेन मालतीवियोगे क्रियमाणाः विलापाः विक्रमोर्वशीयं नाम कालिदासीयं नाटकं स्मारयन्ति। नवमेऽङ्के स्वप्रियतां प्रति सन्देशं प्रेषयितुं माधवेनानुरुध्यमानो जलदो मेघदूतकाव्यसंस्मरणाय पाठकान् प्रसभं प्रेस्यति। “ओजः समास भूयस्त्वमेतदगद्यस्य जीवितम्” इति ब्रूवाणो रीतिकारो भवभूतिनाऽस्मिन् प्रकरणे दीर्घसमासां गद्यावलीं प्रयुज्य बहु सम्भावितः। भारतीयनाट्यपरम्परां चेतसीकृत्य महाकविः भवभूतिः मालतीमाधवयोः परिणयं कारयित्वा नाटकं सुविदितं भवति।

### भवभूतेः मालतीमाधवप्रकरणे अलङ्कारध्वनेः परिशीलनम्

मालतीमाधवस्य मङ्गलाचरणेऽस्मिन् भगवतः शिवस्य स्तुतिः कृता वर्तते। कविकौशलमत्र द्रष्टव्यं भवति। मङ्गलपद्येऽस्मिन् सन्देहः, रूपकं, स्वभावोक्तिचेति अलङ्कारत्रयं परिलक्ष्यते। येनात्र मङ्गलपद्यमिदं काव्यचमत्कारं जनयति।

सन्देहस्य लक्षणं यथा-

“सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः।” ३

प्रकृते उपमेये अन्यस्य उपमानस्य सातिशयं सादृश्येन शसयस्यागमनात् सन्देहालङ्कारो भवति। तत्र मङ्गलपद्ये शिवस्य शिरसि चन्द्रं दृष्ट्वा किमिदं कोमल केतकीपुष्पाग्रभागं वा इति प्रकृते चन्द्रे केतकीपुष्पस्य उपमानस्य संशयः कृतः। अत अत्र सन्देहालङ्कारध्वनिः अभिव्यज्यते।

शिवस्य कण्ठभागे मण्डलाकाररूपेण यः सर्पः आसीत् तदुपरि लतायाः आरोपणं विधाय माला कण्ठेषु बन्धनं कृतमिति निरूपणं विहितम्। तेन उपमेयभूतस्य सर्पस्य लतारूपेण उपमानेन अभेद वर्णनादत्र रूपकालङ्कारो ध्वनिः विलसति। तत्र मङ्गलपद्ये स्वभावोक्तिरपि वर्तते। तल्लक्षणं यथा-

“स्वभावोक्तिर्दुर्लभार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्।” ४

प्रसङ्गेऽस्मिन् भगवतः शिवस्य शिरसि विद्यमानं चन्द्रस्य, गङ्गाजलस्य, कान्तविशेषस्य, सर्पस्य च यथावत् वर्णनं स्वभावोक्तिरलङ्कारध्वनिमभिव्यक्तिः।

मालतीमाधवे प्रथमाङ्के लुप्तोपमालङ्कारोपि काव्यसौन्दर्यं जनयति। यत्र उपमानं, उपमेयः, धर्मः, उपमावाचकस्य च मध्ये एकस्य द्वयोः त्रयाणां वा लोपः भवति। तत्र लुप्तोपमालङ्कारः। मालत्याः सौन्दर्यवर्णने लुप्तोपमाध्वनिं यथा-

“ तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिं विभाव्य

चेतः कथं कथमपि व्यपवर्तते मे।

लज्जां विजित्य विनयं विनिवार्य धैर्य-

मुन्मथ्य मन्थरविवेकमकाण्ड एव।।”५

तामिन्दुसुन्दरमुखिं इति मालत्याः विशेषणे इन्द्र इव सुन्दरमुखं यस्या सा इति बहुव्रीहिसमासे मालत्याः (उपमेयस्य) लोपः विहितः। अतः अत्र उपमेयवाचकलुप्तोपमाध्वनिः अभिव्यजते।

मालतीमाधवस्य प्रथमाङ्के माधवस्य मित्रं मकरन्दः उभयोरपि प्रेमसम्बन्धं अर्थान्तरन्यासालङ्कारेण वर्णयति। तल्लक्षणं यथा-

“भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा।।”६

मकरन्देनोक्तं यत् स्नेहः कारणस्यापेक्षां करोतीति वचनं विरुद्धमस्ति। अन्ततः विद्यमानं किमप्यमेक कारणम्। पदार्थान् परस्परं संघटयति। प्रेम, स्नेहः वा बाह्यकारणानि नावलम्बन्ते। यतोहि सूर्यस्योदये स्वेतकमलं विकसति। उदिते चन्द्रे चन्द्रकान्तमणिः द्रवति। प्रसङ्गेऽस्मिन् उक्तं यथा-

“व्यतिषजति पदार्थान्तरः कोऽपि हेतु-

र्न खलु बहिरुपाधीन्मीतयः संश्रयन्ते।

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं

द्रवति च हिमरश्मावुद्रते चन्द्रकान्तः।।”७

पद्येऽस्मिन् पूर्वपक्तिं द्वये स्नेहस्य प्रेम्णः वा योः अभिप्रायः प्रकटित तत् अन्तिम पादद्वयं समर्थयति। स्नेहस्य विषयः सूर्येण समर्थनादत्र अर्थान्तरन्यासालङ्कारध्वनिः समुल्लसति।

मालतीमाधवे प्रथमाङ्के मालत्याः सखी यदा मकरन्दस्य सौन्दर्यं अपश्यत् तदानीं सम्प्रत्यभिज्ञामिव (पूर्व दृष्टमिव) भुविलासपूर्वकं मन्दहास्यरूपं सुधया मनोहररूपेण कटाक्षनिपातः कृतः। प्रसङ्गेऽस्मिन् उक्तं यथा-

“सञ्चविलासमथ साऽयमितीव नाम

सप्रत्यभिज्ञामिव मामवलोक्य तस्याः।

अन्योन्यमेव चतुरेण सखीजनेन

मुक्तास्तदा स्मितसुधामधुराः कटाक्षाः।।”८

पद्येऽस्मिन् सम्प्रत्यभिज्ञामिव इति उल्लेखालङ्कारध्वनिमभिव्यजते। अर्थात् तत्र मालत्याः सखी मकरन्दं पूर्वदृष्टमिव मनसि तथा व्यवहरति स्म। तदर्थं तत्र उल्लेखाध्वनिः। अपि च स्मितसुधामधुरा इति पदे मन्दहास्यमेव सुधेति कथनेन रूपकालङ्कारोध्वनिमभिव्यजते। तत्र मन्दहास्योपमेपरूपम्। सुधा उपमानरूपा। अत्र मन्दहास्यमेव सुधा इत्युक्तम्। तेनात्र रूपकध्वनिः।

मालतीमाधवे तृतीयाङ्के कस्यापि व्याघ्रस्य स्वरूपवर्णनात् तत्र स्वभावोक्तिलङ्कारमपि काव्यचमत्कारं जनयति। स्वभावोक्तेर्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे-

“स्वभावोक्तिरुद्दृष्टार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्।।”९

मालतीमाधवे माधवः तस्य व्याघ्रस्य आक्रमणात् मालतीं संरक्षति। उक्तं यथा-

“संसक्तश्रुटितविवतिताञ्जाल-

व्याकीर्णस्फुरदपवृत्तरुण्डखण्डः।

कीलालव्यतिकरगुल्फद्वयपङ्कः

प्राचण्ड्यं वहति नखायुघस्य मार्गः।।”१०

अयं व्याघ्रः पूर्वं केनापि निक्षितेन अत्र समुहेन व्याप्तं, रुधिराणां सम्पकेण गुल्फद्वयः पङ्केनावृतं, तस्यागमनं मार्गं भयङ्करमेव आसीत्। अपि च प्राचण्ड्यं नखायुधमासीत्। अत्र व्याघ्रस्य यथास्वरूपं तद्वत् वर्णनात् स्वभावोक्तिध्वनिः।

मालतीमाधवे पञ्चमाङ्के स्वप्रियां मालतीं प्रति प्रेमभावप्रदर्शनावसरे कविना परिवृत्तिलङ्कारः प्रयुक्तः। तत्र परिवृत्तेलक्षणं यथा साहित्यदर्पणे-

“परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनार्थैर्भवेत्।।”११

समानमूल्येन, न्यूनमूल्येन, अधिकमूल्येन वा यत्र परस्परं किमपि विनिमयं वर्णयते तत्र परिवृत्तिलङ्कारो भवति। प्रस्तूते श्लोके माधवः मालतीमुद्दिश्य कथयति मम प्रिया मालती मम कर्णमूले तस्याः मुखमण्डलं स्थापयति। तथा च वासन्ती गुम्फितवकुल मालया तथा मनोहरपयोधरयोः स्थापना मम वक्षस्थले विदधातु। तेनाहं तासामङ्गिसः स्वङ्गस्य विनिमयेन करिष्यामि। तथाहि-

“अतिमुक्तकप्रथितकेसरावली-

सतताधिवाससुभगार्पितस्तनम्।

अपि कर्णजाहविनिवेशिताननम्।

प्रियया तदङ्गपरिवृत्तिमाप्नुयाम्”।।१२

प्रसङ्गेऽस्मिन् मालत्याः वासन्त्याः च अङ्गानां विनिमयः माधवेन सह वर्णने परिवृत्तिलङ्कारध्वनिः अभिव्यजते।

मालतीमाधवे षष्ठाङ्के कामन्दकी वासनेतामुद्दिश्य माधवेन सह प्रेमसम्बन्धं निरूपणावसरे तुल्ययोगिताध्वनिरपि चमत्कारेण कविना प्रयुक्तम्। तुल्ययोगितायाः लक्षणं यथा-

“एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता।।”१३

षष्ठाङ्के कामन्दक्या उक्तं यत् यस्य माधवस्य त्वयि तव च तस्योपरि नयनप्रीतिः तदर्थं मनसा एकाग्रता, शरीरस्य ग्लानिः चाभूत्। सः प्रियतमः माधवः इदानीं यौवनावस्थायां वर्तते। तेन हे सुन्दरि! जडतां त्यज। मदनः सकामोस्तु। उक्तं हि-

“पुरश्चरुगस्तदनु मनसोऽनन्यपरता



तनुग्लानिर्यस्य त्वयि सम्भवद्यत्र च तव।

युवा सोऽयं प्रियानिह, सुवदने! मुञ्च जडतां

विधातुर्वैदग्ध्यं विलसतु, सकामोऽस्तु मदनः।।”१४

पद्येऽस्मिन् अप्रस्तुतानां चक्षुरागादीनां सम्भवनरूपक्रियाणां कर्तृत्वेन अभिसम्बन्धात् तुल्योयोगितालङ्कारध्वनिः काव्यचमत्कारं जनयति।

#### उपसंहारः

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बहूनामालङ्कारिकाणाम् अभिप्रायः। यतो हि ध्वनिरेव व्यङ्ग्यार्थस्य अपरं स्वरूपम्। स च व्यङ्ग्यः साधारणजनैः ज्ञातुं नैव शक्यते। केवलं काव्यतत्त्वज्ञैरेव ध्वन्यार्थस्य ज्ञानं कर्तुं शक्यते। भवभूतेः न केवलं मालतीमाधवे अपि च इतरकाव्यद्वयेष्वपि अलङ्कारध्वनेः प्रयोगसौन्दर्यं प्रमाणयितुं शक्यते। अलङ्कारास्तु काव्यसौन्दर्यहेतवः इति समालोचकानाम् सिद्धान्तः। मालतीमाधवे तु बहुत्र अलङ्कारध्वनेः प्रयोगसौन्दर्येण भवभूतेरपि महाकवित्वं सिद्धयति।।

#### शब्दसङ्केताः

च.आ.-चन्द्रालोकः	सा.द.-साहित्यदर्पणम्
माल.मा.-मालतीमाधवम्	सि.कौ.-सिद्धान्तकौमुदी
पा.सू.-पाणिनीयसूत्रम्	

#### सन्दर्भाः

१. सि.कौ.-१०९५, पा.सु-४.१.९५
२. ध्व.आ -२.१३
३. सा.द -१०.३५
४. सा.द.-१०.९२
५. माल.मा.-१.१९
६. च.आ. -५.३८
७. माल.मा.-१.२५
८. माल.मा.-१.२६
९. सा.द.-१०.९२
१०. माल.मा.-३.१७
११. सा.द.-१०.८०
१२. माल.मा.-५.८
१३. सा.द. -१०.४७
१४. माल.मा.-६.१५

#### सहायकग्रन्थसूची

१. ध्वन्यालोकः- श्रीमदानन्दवर्धनाचार्य प्रणीतः, (सं) डा. गङ्गासागर रायः, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, २००४।
२. मालतीमाधवम्- महाकविभक्तिप्रणीतः, (सं) शेषराजशर्मा-शास्त्री-काव्यतीर्थः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-२००५।
३. चन्द्रालोकः- श्रीजयदेवः, (सं) डा. सुबोधचन्द्रपन्त, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदासः, १९७५।
४. साहित्यदर्पणः- श्रीविश्वनाथकविराजः प्रणीतः, The Lakshmi Sanskrit Commentary and Notes, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९९६।
५. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- श्रीमद्-भट्टोजीदीक्षितः (सं) श्रीगोपालदत्तपाण्डेय, चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी, २००४।

## श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित साम्यवाद की वर्तमान में उपयोगिता

पुष्पा अवस्थी

सुमन पाण्डेय

संस्कृत वाङ्मय में वैदिक साहित्य के अनन्तर लौकिक साहित्य के अन्तर्गत दो अमूल्य ग्रन्थ हैं रामायण एवं महाभारत। श्रीमद्भगवद्गीता इसी महाभारत का एक अंश है। महाभारत के धर्मयुद्ध में मोहग्रस्त अर्जुन के मोह को दूर करने तथा उसे धर्मयुद्ध में सन्तुष्ट करने के लिए श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से युद्धक्षेत्र में ही महारथी अर्जुन को जो ज्ञान दिया था वही श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से ज्ञेय है। यह अपूर्व ग्रन्थ विश्व के समस्त धर्मग्रन्थों में अनन्य स्थान रखता है। श्रीकृष्ण भगवान स्वयं इसके वक्ता हैं। उनका कहना है— “गीता में हृदयं पार्थ।” गीता का ज्ञान किसी काल-जाति-धर्म विशेष के लिए ही उपादेय नहीं वरन् इसका अमूल्य उपदेश तो सार्वभौमिक-सार्वकालिक एवं सर्वजनहिताय है। गीता में मनुष्य मात्र के लिए उच्चतम आदर्श का न केवल निर्धारण किया गया है अपितु उसकी प्राप्ति के सुलभ से सुलभ साधन भी बताए गए हैं। यथार्थ में गीता सम्प्रदाय, जाति और देश की भिन्नता का निराकरण करके साम्यवाद की स्थापना करने वाला एक सार्वभौम एवं सर्वग्राह्य सिद्धान्त का प्रतिपादित करने वाला अप्रतिम ग्रन्थरत्न है। यही कारण है कि सात सौ श्लोकों में निबद्ध श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित विषय आज भी उतना ही उपयोगी है जितना कि यह तब रहा होगा।

आज के समय में सर्वत्र साम्यवाद की चर्चा जोर-शोर से की जाती है। धनी-निर्धन, उच्चवर्ग-निम्नवर्ग, बड़े-बड़े उद्योगपति और कामगर-मजदूर सबके बीच बराबरी (धन-सम्पत्ति और रहन-सहन की दृष्टि से) हो, समानता हो, इसी को आज सब लोग साम्यवाद कहते हैं और ऐसी समानता प्राप्त करने के लिए संघर्षरत भी दिखाई देते हैं। गम्भीरता से विचार करने पर हम देखते हैं कि विधाता की इस सृष्टि में सभी में समानता कभी हो ही नहीं सकती और सबमें समता का होना आवश्यक भी नहीं है। यह सृष्टि नितान्त विषम है। यहाँ न सबकी रूपाकृति एक जैसी है और न ही बुद्धि-बल में समता है। प्रत्येक व्यक्ति के गुण-कर्म-स्वभाव में भी समानता नहीं दिखती है। अतः देश-काल-पात्र और पदार्थों में सर्वत्र समानभाव से समता कदापि संभव नहीं है तो फिर भला आज के तथाकथित साम्यवादियों को मान्य जो साम्यवाद है वह कैसे सफल हो सकता है?

वास्तविक साम्यवाद तो भारतीय ऋषि-मनीषियों की विचारधारा में दिखाई देता है। वे दिखावटी समता के बजाय अन्तस् की समता के पक्षधर हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में

श्रीकृष्ण ने जीवन्मुक्त का मुख्य लक्षण ‘समता’ को बताया है। गीता में वर्णित ‘समता’ ही वास्तव में साम्यवाद की सही परिभाषा है जिसमें अमर्यादित उच्छृंखल जीवन के लिए कोई स्थान नहीं है। यही ‘समता’ शान्तिप्रद और समस्त दुःखों का अन्त करने वाली है।

गीता में भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं –

“चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।”<sup>1</sup>

सत्व, रज एवं तम इन तीन गुणों के विभाग से तथा भले-बुरे कर्मों के विभाग से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये चारों वर्ण मेरे द्वारा ही उत्पन्न किए गए हैं। जो व्यक्ति इस बात में विश्वास रखते हैं कि चातुर्वर्ण्य की सृष्टि स्वयं ईश्वर ने की है वह चारों वर्णों को समान ही समझते हैं। यह साम्यवाद केवल कल्पना नहीं वरन् आचरण के योग्य है। सभी को एक ही ईश्वर से उत्पन्न मानना यही वास्तविक समता है। जिसने अपने विचारों एवं व्यवहार में ऐसी समता प्राप्त कर ली हो उसने तो मानों परमात्मा को ही प्राप्त कर लिया। सबको अपने समान समझना यही वास्तविक साम्यवाद है। भगवान ने गीता में कहा भी है –

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।<sup>2</sup>

जिसका मन सबमें समत्वभाव वाला है अर्थात् जो सबको अपने ही समान समझता हो उसने तो जीवित रहते ही ब्रह्म को प्राप्त कर लिया ऐसा समझना चाहिए। सच्चिदानन्द परमात्मा निर्दोष है। अतः समत्वभाव में स्थित व्यक्ति भी निर्दोष होने से सच्चिदानन्द परमात्मा में ही स्थित है। जहाँ यह समता है वहाँ काम, क्रोध, मद, मोह लोभ, ईर्ष्या द्वेष असत्य, हिंसा एवं छल-कपट के लिए कोई स्थान नहीं होता। अतः जहाँ समत्वभाव है वहाँ सम्पूर्ण अनर्थों का अभाव होकर सभी सद्गुणों का स्वयमेव विकास हो जाता है। प्रायः राग द्वेषादि अनुकूलता-प्रतिकूलता जन्य होते हैं और इन्हीं से समस्त दोषों एवं दुराचारों की उत्पत्ति होती है। गीतोक्त साम्यभाव में इनका अत्यन्त अभाव है। इसलिए उसमें किसी प्रकार के दोष दुराचार की संभावना भी नहीं है।

इस समता या साम्यवाद को सरलतापूर्वक समझाने के लिए गीता में श्रीकृष्ण ने क्रिया, भाव, पदार्थ और प्राणियों में समता की बात अनेकशः व्यक्त की है। गीता में मनुष्यमात्र को समान दृष्टि से देखने की बात कही गई है –

सृहन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।

साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।<sup>3</sup>

जो मनुष्य शत्रु-मित्र, उदासीन-मध्यस्थ, द्वेषी-बन्धु तथा धर्मात्मा तथा पापात्मा के प्रति समानभाव वाला होता है वह अत्यन्त श्रेष्ठ है। वही सच्चा समदर्शी अर्थात् साम्यवादी विचारों वाला है। समत्व भाव वाला व्यक्ति तो विद्या विनय युक्त मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों अर्थात् सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है –

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।<sup>4</sup>

इसका अभिप्राय यह है कि मन में समत्व भाव रखने वाला व्यक्ति विद्याविनय आदि गुणों से युक्त ब्राह्मण आदि उत्तम प्राणी, रजोगुणयुक्त मध्यम प्राणी तथा गाय-हाथी तथा अत्यन्त मूढ़, तमोगुणयुक्त चाण्डाल आदि के प्रति भी समदर्शी होता है। गीता में श्रीकृष्ण ने योगी का धर्म ही सबके प्रति समत्व भाव वाला होना बताया है –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शनः।<sup>5</sup>

अन्यत्र भगवान् कहते हैं – “समत्वं योग उच्यते”। समस्त जीवमात्रं में समता का आधान करते हुए गीता में कहा गया है –

**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।**

**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥<sup>6</sup>**

जो अपनी समदृष्टि से सम्पूर्ण प्राणियों को समानभाव से देखता है तथा सुख-दुःख को भी सबमें समरूप से देखता है वह परम श्रेष्ठ योगी है। गीता में समता का कथन करते हुए एक स्थान पर श्रीकृष्ण ने व्यक्ति, क्रिया, भाव एवं पदार्थ की समता का वर्णन इस प्रकार किया है –

**समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।**

**शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥<sup>7</sup>**

जो शत्रु एवं मित्र के प्रति, अपने मान-अपमान अथवा सत्कार एवं तिरस्कार के प्रति, सर्दी-गर्मी के प्रति और तज्जन्य शारीरिक सुख दुःख के प्रति समभाव वाला तथा विषयासक्ति से रहित हो चुका है वहीं श्रेष्ठ समदर्शी है।

इस प्रकार जो सर्वत्र समदृष्टि वाला है जिसके लिए समस्त संसार आत्मवत् है वही समतायुक्त पुरुष है और वही सच्चा साम्यवादी है। इस समता का संबंध प्रमुखतः मनुष्य के अन्तः से है। इसमें सर्वत्र समदर्शन है, समर्वतन नहीं। यह समत्व बाहरी व्यवहार में सर्वत्र एक सा नहीं है। बाह्य व्यवहार में तो मन से साम्यवाद को न मानने वाला भी ऐसा व्यवहार कर सकता है जैसे मानो उससे बड़ा साम्यवादी कोई दूसरा नहीं है। अतः समता केवल व्यक्ति के व्यवहार में नहीं अपितु मनुष्य के अन्तस् में भी होनी चाहिए तभी वह यथार्थ साम्यवादी है और यही अन्तस् की साम्यता ही सच्चा साम्यवाद है।

इस प्रकार व्यवहार में शास्त्र मर्यादा का पालन करते हुए लोककल्याण के लिए स्वार्थरहित होकर न्याययुक्त विषमता का व्यवहार करते हुए भी सबमें समभाव देखना और राग द्वेषादि विकारों से रहित होकर मान-अपमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, शत्रुता-मित्रता, निन्दा-स्तुति, सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि समस्त विषमताओं में समतायुक्त रहना ही यथार्थ में साम्यवाद है। गीता में वर्णित इसी साम्यवाद से परम कल्याण की प्राप्ति संभव है।

यदि हम गंभीरता से विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि आज का साम्यवाद ईश विरोधी है जबकि गीता का साम्यवाद सर्वत्र ईश्वर को देखता है। वर्तमान का साम्यवाद धर्म का नाशक हिंसामय, स्वार्थ मूलक है जबकि गीतोक्त साम्यवाद पद-पद पर धर्म की पुष्टि करने वाला, अहिंसा का प्रतिपादक तथा स्वार्थ से सर्वथा रहित है। आज का साम्यवाद खान-पान स्पर्शादि में ऐक्य रखकर भी आन्तरिक भेदभाव को पालता-पोसता है जबकि गीता में वर्णित साम्यवाद खान-पान आदि में शास्त्र मर्यादानुसार यथायोग्य भेद रखते हुए भी आन्तरिक भेदभाव नहीं रखता। वह सबमें अपने को ही देखने का उपदेश देता है अर्थात् सबको अपने से अभिन्न मानता है। वर्तमान में साम्यवाद का लक्ष्य धन है। उसमें अपने दल का अभिमान और अन्यो के प्रति अनादर भाव है। दूसरी ओर गीता में वर्णित जो साम्यवाद है वह केवल ईश्वर प्राप्ति रूप लक्ष्य को लेकर चलता है और उसमें सर्वथा अभिमान शून्यता है।

आज के साम्यवाद में केवल बाहरी व्यवहार की समानता दिखाई देती है जबकि गीता के साम्यवाद में अन्तःकरण के साम्य की प्रधानता है। आज का साम्यवादी दूसरे के धन और दूसरे के मत मतान्तरों के प्रति असहिष्णु है। गीता का साम्यवाद सबके प्रति

आदर भाव सिखाता है। आज के साम्यवाद में राग द्वेष है और गीतोक्त साम्यवाद राग द्वेष से सर्वथा रहित है।

अतएव इन्हीं सब बातों पर विचार करके आवश्यकता इस बात की है कि जो आज के तथाकथित साम्यवादी रागद्वेषपूर्ण, हिंसावादी, स्वार्थपूर्ण, दलगत अभिमान, दूसरों के प्रति अनादर आदि को साम्यवाद कहते हैं उन्हें गीता के साम्यवाद से सीख लेकर ऐसे समाज का निर्माण करना चाहिए जिसमें लोगों के बीच यात्किंचित व्यवहारगत विषमता भले ही दिखाई दें किन्तु उस समाज के लोगों के दिलों में समानता अर्थात् साम्यभाव होना चाहिए। ऐसा साम्यवाद ही वर्तमान में उपयोगी एवं कारगर सिद्ध हो सकता है। मन से तो आप किसी के प्रति द्वेषयुक्त हो और बाहरी रूप से उनके प्रति समभाव प्रदर्शित करें ऐसा साम्यभाव कहाँ तक चल सकता है और कितना उपयोगी हो सकता है? इसमें सन्देह है।

अतः गीता में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा वर्णित शास्त्रमर्यादानुरूप बाह्य विषमता के होते हुए भी प्राणिमात्र के प्रति अन्तःकरण का समभाव ही वास्तविक साम्यवाद है जो समाजोपयोगी प्राणीमात्र का कल्याणकारक है और विश्वशान्ति का साधन है।

#### संदर्भ -

1. श्रीमद्भगवद्गीता- 4/13
2. वही- 5/19
3. वही- 5/9
4. वही- 5/18
5. वही- 6/29
6. वही- 6/32
7. वही- 12/18

#### संदर्भ-ग्रंथ

श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, सप्तम संस्करण, संवत्-२०६८

## कलौ धर्मशास्त्रम्

कृष्णाशर्मा

सदाचारः सततं रक्षणीय इति वचनेन आचारविचारयोः सत्ता स्वयमेव प्रमाणभूमिमाप्नोति। सदाचारेणानेन जनो विजयश्रीमवाप्य सुखपूर्वकं वसत्यस्मिन् संसारे। अस्माकं को धर्मरिति जिज्ञासायां धर्मशास्त्रमेव प्रमाणं शरणञ्च। अतः कलियुगेऽस्मिन् धर्मशास्त्रस्यास्य किमुपयोगित्वमिति विस्तरेणैह प्रपञ्चयिष्यते।

देशकालपरिस्थित्यनुसारं धर्मः रक्षणीयः। चतुर्युगाः स्ववैशिष्ट्यानुसारं भिन्नाः सन्ति। तेषु प्रथमे सत्ययुगे धर्मस्वरूपे प्रगाढताऽऽसीत्। जनाः स्वजीवनस्य दैनिकक्रियां प्रायश्चित्तञ्च धर्मानुसारमेव कुर्वन्ति स्म। सत्ययुगस्यापरनाम कृतयुगमस्ति। युगेऽस्मिन् प्रत्येकं कार्यं पूर्णमेव भवति स्म अतः कृतयुगमुच्यते। महाभारते उक्तं च-**कृतमेव न कर्त्तव्यं तस्मिन् काले युगोत्तमे।** श्वेत-पीत-लोहित-कृष्ण एते क्रमशः चतुर्युगानां वर्णा उक्ताः। धर्मा वृषरूपेण कृतयुगे चतुर्षु पादेषु स्थितोऽसीत्, मनुनोक्तं च-

वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।

वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥२

अनन्तरं प्रतियुगे पादस्येकस्य क्षयेन अस्मिन् कलियुगे केवलं चतुर्थपाद एवावशिष्टः। पादत्रयः अधर्मे समाविष्टो जातः। कृतयुगस्य धर्मस्य वैशिष्ट्यानां चतुर्थं भागमेवावशिष्टं कलियुगे। यथा मनुना निगदितम्-

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे।

अन्ये कलियुगे नृणाम् युगहासानुरूपतः॥

तपःपरं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥३

अतः कृतयुगे तपस्य, त्रेतायां दार्शनिकज्ञानस्य, द्वापरे यज्ञानां कलियुगे च केवलं दानस्यैव महिमाऽस्ति। कलिस्वरूपविषये एतरेयब्राह्मणे वर्णितं यत्-

कलि शयानो भवति संजिहानस्तो द्वापरः।

उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥४

मनुष्यः शयानः कलि, उत्थानसन्नद्धसमये द्वापरः, उत्थाय त्रेता तथा च यदा भ्रमणं करोति तदा कृत भवति। कलियुगस्य निर्णयविषये नैका निर्णया वर्णिताः कैश्चन् विद्वद्भिः तस्यारम्भः कृष्णस्वर्गगमनानन्तरं मन्यते-

यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नैव तदा दिने।

प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संज्ञा निबोधतः ॥ ५

कैश्चन् द्रोपद्याः मरणानन्तरं स्वीक्रियते। अतः सामान्यरूपेण कलियुगस्यारम्भः महाभारत-कालानन्तरमभवत्। बृहत्संहितायामुक्तम्-

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।

षड्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥ ६

मन्वनुसारं युगः कालस्य बद्धभागं नास्ति अपितु नृपः स्वाचरणेन एकयुगस्य विशेषतां द्वितीययुगे प्रवहितुं शक्नोति यथा -

कृतं त्रेतायुगं चैव द्वापरं कलिरेव च।

राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥७

धर्मशब्दस्यार्थः

अस्मिन् कलियुगे तु धर्मशास्त्रस्यैव सर्वाधिकाऽवश्यकता वर्तते। सम्प्रति धर्मशास्त्रस्याध्ययनं चिंतनञ्च सर्वैः करणीयम्। उक्तञ्च -

धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।

धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत् ॥

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः।

यत् स्यात् धारणसंयुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः ॥८

धर्मोणार्थोत्पन्नः भवति, सुखं प्रभवति, मनुष्यः सर्वं प्राप्नोति। धर्मेण प्रजायाः परिपालनं भवति, यः धारणयोग्योऽस्ति स एव धर्मः, एतादृशाय धर्माय नमः। अत्र सर्वप्रथमं धर्मशब्दस्य विषये विचारयामः - धर्मशब्दस्य धारणार्थः धरति लोकान् ध्रियते वा जनैरिति धर्म इत्यपि व्युत्पादयन्ति। धृता रक्षिता इत्यर्थः। येन सुष्टिक्रिया रक्षिता भवति स इत्यपि प्रतिपादयन्ति विज्ञाः। महाभारते उक्तञ्च -

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।

यः स्याद् धारणसंयुक्तः सः धर्म इति निश्चयः ॥९

वेदविहितकर्मणि धर्मशब्दः प्रयुज्यते। धर्माः पुण्ययमन्यायस्वमाचारसोमपाः इति एतेस्वर्थेषु प्रयुज्यते धर्मशब्दः इति हलायुधकोशकाराः। अथर्ववेदे धर्मशब्दस्य प्रयोगः धार्मिकसंस्कारैः अर्जितगुणानामर्थं प्रयुक्तोऽभवत् यथा -

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं धर्मो धर्मश्च कर्म च ।  
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥१०

एतरेयब्राह्मणेऽपि धर्मशब्दः सकलधार्मिककर्तव्यानामर्थे प्रयुक्तोऽभूत् । छान्दोग्योपनिषदि धर्मस्य तिस्रःशाखाः स्वीकृताः, तद्यथा-त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति । प्रथमस्तप एवेति, द्वितीयो ब्रह्मचर्याचार्य कुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्य कुलेऽवसादायन् निवासः। सर्वे एते पुण्यलोकाः भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ।

एतेन ज्ञायते यत् धर्मशब्दस्यानेकेष्वर्थेषु प्रयोगो भवति स्म। धर्मस्य स्वरूपम् वैशेषिकदर्शने महर्षिकणादेनोक्तम्-  
यतोऽभ्युदयनिःश्रेयसःसिद्धिः सः धर्मः।११ अर्थात् यस्मात् सांसारिकसुख-पुत्र -पौत्र-कलत्र -धनैश्वर्यादयः प्राप्यते स एव धर्मः एते एवाभ्युदयशब्देनोच्यते। धर्मसंस्कृततत्त्वज्ञानमेवेहलौकिकपारलौकिकयोःसुखसाधनं च भवति। धर्महीना जनाः छलेन अन्यायेन च धनैर्भवादयस्तु प्राप्तुं शक्नुवन्ति किन्तु परमानन्दस्वरूपं सुखं च प्राप्तुं न प्रभविष्यति । तैत्तिरीयोपनिषदि च -सत्यं वद ,धर्मं चर ,स्वाध्यायान्मा प्रमदः,धर्मान्मा प्रमदः ।१२ इत्युक्तम् । संपूर्णवाङ्मयस्य परमोद्देश्यं धर्मसंस्थापनमेव प्रतिभाति। आचारेषु व्यवहारेषु च पवित्रता, सत्यता च धर्मणैव संभवति। निरुक्तशास्त्रे चोक्तं- नियम एव धर्मस्तु परिपुष्णाति। येन नियमेन संसारःप्रचलति स एव धर्मः।

सम्पूर्णस्य जगतः धर्मा एव कथ्यते। कालानुसारं सूर्यचन्द्रनक्षत्रादयःषड्भूतवःअन्याश्च प्रकृतेः रूपाः धर्मणैव निषद्यन्ते अतएव एतानि प्रकृतिधर्माणि कथ्यन्ते। यदा एतेषु प्राकृतिककर्मसु विकृतिर्भवति तदा प्रजायामशान्तिरोग-दुर्भिक्षादयः व्युत्पद्यन्ते । ये चाधर्मस्य वृद्धेः द्योतकास्सन्ति । अस्य जगतः अणु -परमान्वादिषु धर्मःव्याप्तः। जगति समुपलब्धपदार्थेषु कोऽपि धर्मरहितं न दृश्यते। स्वरूपस्य रक्षायै पदार्थैःधृतं धारणमेव धर्मः।धृतधर्ममेव पदार्थान् रक्षति। उक्तञ्च -

धर्मो रक्षति रक्षितःधारणाद् धर्ममित्याहुः।

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा अतो धर्माणि धारयन् ॥१३

प्राणिनां कल्याणाभ्युदयाभ्यां धर्मस्योपदेशः तस्य प्रवर्तनं वाऽभूत् ,ईदृशी शास्त्राणामान्यताऽस्ति । धर्मस्य मर्मज्ञानां कथनमस्ति यत् धर्मःसर्वजनान् धारयति पोषयति च ।अस्योपदेशः प्राणिनां हिंसानिषेधायाभवत् । अतः यत् अहिंसायुक्तमस्ति तत् धर्मं कथ्यते ।धर्मशब्दः शक्ति-गुण-स्वरूप-स्वभावानां वाचकः । यश्च सर्वपदार्थेषु विद्यमानःभवति यथा-अग्रयम् उष्णतारूपे,जले शीतलतारूपे, अक्षिणि दृष्टिरूपे। सृष्ट्यामस्याम् सर्वश्रेष्ठःजीवोऽस्ति, जीवेषु बुद्धिजीवाः, बुद्धिजीवेषु च मनुष्याः । अतएव सृष्ट्यां सर्वत्र मनुष्याधारितधर्मस्यैव चर्चा विहिता । यथा- धर्मं चर । धर्मसंस्थापनार्थाय । धर्मानुगमो गच्छति जीव एकः। धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये । बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफला क्रिया । एक एव सुहृदःधर्मः।तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । १४ इत्यादयः। धर्माचरणाद्विद्यायाःनिवारणं सच्चिदानन्दस्य च प्रतिपत्तिर्भवति । सदसद्विवेकशालिनी बुद्धिः मनुष्ये एवास्ति अतः धर्माचरणमोक्षपुरुषार्थचतुष्टयां

प्राप्तिरेव मानवजीवनस्य परमलक्ष्यं वर्तते । अस्माकं शास्त्रेषु नैकाः कठिननियमा वर्णिताः, समयानुसारं तेषु परिवर्तनमपि जातम् । धर्मशास्त्रस्येतिहासग्रन्थे कानिचित् कलिवर्ज्यानि वर्णितानि यथा - ज्येष्ठांश उद्धारभागं वा, नियोगविधिः, सगोत्रे विवाहः, गोसवादिपशुयज्ञः, सौत्रामणीयज्ञे सोमपानम्, वानप्रस्थाश्रमे प्रवेशः, महापातके दिव्यानां प्रयोगः, एकदिवसपर्यन्तमन्नसंग्रहणम्, द्वादशपुरेषु केवलयोः औरसदत्तकयोःस्वीकरणम्, अन्यदशपुराणामस्वीकरणम्, एतादृशानि बहूनि कार्याणि कलिवर्ज्यानि सन्ति । सर्वेषां वर्णनमत्र संभवं नास्ति । कथनस्याशयोऽत्रायं वर्तते यत् जनाः येषां शास्त्रोक्तकर्मणां पालने काठिन्यमनुभवन्ति तेषां पालनं स्वधर्मानुसारं देशकाल -परिस्थित्यनुसारं सरलीकृत्य कर्तुं शक्नुवन्ति ।

**धर्मशास्त्रीय व्यवस्था** - भारतीय सामाजिकव्यवस्थायाः आधारस्तम्भौ वर्णाश्रमौ स्तः। वर्णव्यवस्थायां मनुष्यःब्राह्मण-क्षत्रिय-विट-शूद्ररूपेण विभक्त आसीत् । एतेषां वर्णानां कर्माण्यपि निर्धारितान्यासन् । वर्णव्यवस्थया सामाजिकसंगठनं सुव्यवस्थां समृद्धिं च प्राप्तुवन्ति स्म । तथैवाश्रमव्यवस्थाया मनुष्यः पुरुषार्थचतुष्टयं प्राप्य मानवजीवनं सफलीकुर्वन्ति स्म। वर्णानां वर्गीकरणस्याधारौ गुणः कर्म चास्ताम् । तदुक्तं गीतायाम् -

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

तस्य कर्तारमपि मां विद्मकर्तारमव्ययम् ॥१४

वर्णव्यवस्थाया वैशिष्ट्यं गुणाश्च - (१) विपत्तौ भारतीय संस्कृतेः समाजस्य धर्मस्य च रक्षा वर्णव्यवस्थयैवाभवत् । वैदेशिकशासनकालेऽपि चतुर्वर्ण्यजनाः स्वधर्मं पालयन्तःस्वामिमानरक्षणे समर्था अभवन्। (२) एषा व्यवस्था अध्यात्मावलम्बितासीत्, जनानाम् आध्यात्मिकोन्नति एवास्याः परमफलमासीत् । फलतः भारतीयानामाध्यात्मिकविकासोऽभूत्। (३) सर्वे वर्णाःस्वकर्तव्यपालने पूर्णस्वतन्त्राःआसन् । अतस्ते स्वविकासाय पूर्णावसारान् अलभन्त। अनया व्यवस्थया समाजे एकत्वभावनायाःविकासोऽभवत् । समानकर्मकराःसंघं निर्माय स्वहितरक्षामकुर्वन्। (४) सर्वे वर्णाः स्वकर्मणि कुशलतां प्राप्तुं प्रयतन्ते स्म येन समाजे कार्यकुशलानां वृद्धिरभवत्। (५) वर्णव्यवस्थायाः विकासः वैज्ञानिके बौद्धिके च सिद्धान्तेष्वभवत् ,तत्र मनोविज्ञानस्य,नीतिशास्त्रस्य ,प्राणिशास्त्रस्य ,अर्थशास्त्रस्य च सिद्धान्तानां समावेशो वर्तते। अतः समाजे सहयोगस्य जागरूकतायाश्च विकासोऽभूत् ।

एतदतिरिच्य भारतीयसमाजेऽऽश्रमव्यवस्थायाः महत्वपूर्णं स्थानमासीत्, ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्रमश्चेति चत्वारः आश्रमाः । आश्रम्यते स्थीयते यस्मिन् स आश्रमः । चतुर्णामाश्रमधर्माणां पालनेनैव शतवार्षिकं मानवजीवनं पूर्णतामाप्नोति। पञ्चविंशतिवर्षपर्यन्तमेकस्मिन्नेवाश्रमे विश्रम्य चत्वार एवाश्रमाः सेव्याः। व्यवस्थेयं विज्ञानसम्मताऽसीत्। प्राचीनविचारकाः मानवकार्यपद्धतेः समाजशास्त्रीयं मनोवैज्ञानिकद्व्याध्ययनं कृत्वा जीवनस्य मूलकर्तव्यानां निर्धारणमकुर्वन् । तेषां विचारदर्शनानुसारं जीवने कर्तव्यपरायणतायाः, बौद्धिकतायाः, आध्यात्मिकतायाश्च समावेशः परमावश्यकोऽसीत्। मानवजीवनं शतवार्षिकं मत्वा चतुर्वर्गफलप्राप्तये आश्रमचतुष्टये विभक्तं कृतं तैः। श्रमैवावस्य वर्गीकरणस्याधारोऽसीत् यतोहि श्रम एव मानवानां व्यावर्तकधर्मः ।

विद्यार्थिजीवने धर्मशास्त्रस्यावश्यकता - मानवजीवनस्य समुन्नतये विद्यार्थिजीवने केषाञ्चित् नियमानां पालनमावश्यकं वर्तते। तेषु अनुशासनस्य पालनं सर्वप्रथमं यतोहि धर्मस्यापरनाम अनुशासनम्। विद्यार्थिनामावश्यकः केचन नियमाः सन्ति तासु १. ब्रह्मचर्यस्य पालनं कृत्वा आयुर्विद्यायशबलानि वर्धयेत् । २. स्मरणशक्तिवर्धनाय स्वाध्यायरतः स्यात्। ३. शिक्षणविधिषु श्रवणमनननिधिध्यासनञ्च विधीनां पालनं कुर्यात्। एतेषु प्रथमः विधिः गुरुप्रदत्तोपदेशानां दत्तचित्तरूपेण श्रवणम्, द्वितीयः मननं तर्कवितर्कानुशीलनम्, अन्ते च निधिध्यासनविधिना गुरुपदेशानां साधनात्मकमनुभूतिपूर्वकं प्राप्तये प्रयासः । ४. अस्माकं धर्मशास्त्रीयव्यवस्थायां गुरुशिष्ययोः सम्बन्ध अति प्रगाढः वर्णिताः । अतः शिष्याः गुरुं प्रति शृश्रूषाभावना, सत्कारम् आज्ञापालनञ्च कुर्यात्, गुरुरपि शिष्यं प्रति वात्सल्यपूर्णव्यवहारं कुर्यात्। यथा मनुनापि निर्गादितम् -

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पितामूर्तिः प्रजापतेः ।

माता पृथिव्याः मूर्तिस्तु भ्राता स्वोर्मूर्तिरात्मनः ॥१५

#### आधुनिकपरिदृश्ये धर्मशास्त्रस्योपादेयता-

आधुनिकभारतवर्षस्य सामाजिकव्यवस्थायां बहुपरिवर्तनं जातम् । आध्यात्मिकतायाः अभावः सर्वत्र दृश्यते । कालेस्मिन् सर्वत्र भ्रष्टाचारः, असत्यं, हिंसा, स्तेयं च दृग्गोचरं भवति । अस्मिन् परिदृश्ये अस्माकं समाजे धर्मशास्त्रीयव्यवस्थायाः बहु आवश्यकता प्रतीयते । अपरा च नूतना समस्याऽस्माकं समाजेऽस्ति भ्रूणहत्या अथवा नवजातकानां परित्यागः। सर्वकारः क्षेत्रेऽस्मिन् बहुप्रयत्नानि करोति तथाऽपि एतस्याः समस्याः समाधानं धर्मशास्त्रस्योपयोगेन संभवति । धर्मशास्त्रे षोडससंस्काराणां वर्णनमस्ति । संस्कारेष्वेतेषु पुंसवनसंस्कारोऽपि वर्तते । अस्य संस्कारस्य संस्कारः यदि समाजे भवेत् तर्हि प्रायः अशीतिः नवतिः प्रतिशत परिणामाः सकारात्मकाः भवितुं शक्नुवन्ति । पुंसवनसंस्कारस्य विधिः शास्त्रेषु वर्णिताऽस्ति या च सरला सर्वजनसुबोधाऽस्ति । अस्य विधेः प्रयोगः सर्वजनैः भवेत् चेत् बहुलाभप्रदः भविष्यति । आधुनिकधर्मशास्त्रीयविद्वांसः अस्य प्रयोगोऽपि कृतवन्तः। अस्य परिणामरूपे अष्टप्रयोगेषु षड्योगाः सकारात्मकाः आसन्।

अस्माकमाधुनिकाः नवयुवकाः पाश्चात्यसंस्कृतिमङ्गीकर्तुं शनैः शनैः प्रयतन्ते तथैव संयुक्तपरिवारस्य विघटनमपि तीव्रगत्या इदानीं प्रचलति। अस्य मुख्यकारणम् अस्माकं संस्कृतेः, शास्त्राणां, मूल्यानां च हासः। पाश्चात्यसंस्कृतिमनुसृत्य एकाकीपरिवारस्यावधारणा जनमनसि प्रादुर्भूता । अस्याः अवधारणायाः दीर्घकालीनाः विकटाः परिणामाः भविष्यन्ति । अतः बाल्यकालादेव बालके संस्काराणामाधानं पितृभ्यां करणीयम् ।

निष्कर्षत एतत् कथयितुं शक्नोमि यत् अस्मिन् नवीनपरिवेशे धर्मपालनार्थं धर्मशास्त्राध्ययनस्य अनुशीलनस्य च बहु आवश्यकता दृश्यते। धर्मपालनार्थम् आचरणानामेवावश्यकतास्ति न तु शास्त्रीयनियमानाम्। आचरणानां परिष्काराय

नियमाः भवन्ति यथा व्याकरणस्य नियमाः भाषां संगतं परिमार्जितं च कुर्वन्ति तथैव धर्मग्रन्थेषु समाहितनियमोपनियमाः, विविध- विधिनिषेधाः धर्माचरणं नियमितं परिष्कृतं च कुर्वन्ति। अतः सदाचार एव धर्मस्य व्यावहारिकं स्वरूपमस्ति।

#### सन्दर्भाः

१. महाभारतम्- वनपर्व- १४१/११
२. मनुस्मृतिः- ८/१६
३. मनुस्मृतिः- १/८३, ८४
४. एतरेयब्राह्मणः- ३३/३
५. वायुपुराणम् - ९९/४२८-४२९, ब्रह्माण्डपुराणम्- २/७४/२४१
६. बृहत्संहिता- १३/३
७. मनुस्मृतिः- ९/३०१
८. महाभारतम्- शा. प.
९. महाभारतम्- शा. प. १०९/१०
१०. अथर्ववेदः- ९/९/१७
११. वैशेषिकदर्शनम्- १/१/२
१२. तैत्तिरियोपनिषद्- ११/११
१३. ऋग्वेदः- १/२२/१८
१४. श्रीमद्भगवद्गीता- ४/१३
१५. मनुस्मृतिः २/२२६

#### सन्दर्भग्रन्थसूचिः

१. श्रीमद्भगवद्गीता- गीताप्रेस, गोरखपुर, सप्तम संस्करणम्, संवत्-२०६८
२. महाभारतम्- गीताप्रेस, गोरखपुर
३. ईशादि नौ उपनिषद्- गीताप्रेस, गोरखपुर

## व्यपदेशिवदेकस्मिन् परिभाषाविचारः

मधुकेश्वरभट्टः

लेखे व्यपदेशिवदेकस्मिन् परिभाषायाः आवश्यकता, परिभाषासिद्धिप्रकारः, परिभाषायाम् एकस्मिन् पदप्रयोजनम्, अनया अशास्त्रीयस्यापि अतिदेशः, तत्र कैयटाशयः, कैयटमतनिराकरणं कथमकारि इति विषयान् विविदिषामि।

अनियमे नियमकारिणी परिभाषा। परिभाषा हि द्विविधा तत्रादौ सूत्रात्मिका याः पाणिनिना उच्चारिताः अन्याश्च याः पाणिनिना साक्षान्नोच्चारिताः। अत एव परिभाषेन्दुशेखरे नागेशेन एवं स्पष्टकारि प्राचीनवैयाकरणतन्त्रे वाचनिकान्यत्र पाणिनीयतन्त्रे ज्ञापकन्यायसिद्धानि भाष्यवार्तिकयोरुपनिबद्धानि यानि परिभाषारूपाणि तानि व्याख्यायन्ते<sup>1</sup> इति। तासु परिभाषासु अन्यतमा परिभाषा व्यपदेशिवदेकस्मिन् इति। दक्षस्यापत्यं पुमान् दाक्षिः इत्यत्र दक्ष इति अदन्तात् प्रातिपदिकात् अत इज्<sup>2</sup> सूत्रेण इज्-प्रत्यये दक्ष+ङ्स+इ इति स्थिते सुब्लुकि यचि भम्<sup>3</sup> इत्यनेन भवात् यस्येति च<sup>4</sup> इत्यनेन अकारलोपे ततः तद्धितेष्वचामादेः<sup>5</sup> इति सूत्रेण आदिवृद्धौ दाक्षि इति सिद्धे पुनः सुबुत्पत्तौ प्रथमैकवचने दाक्षिः इति रूपं सिध्यति। वासुदेववाचकात् अ शब्दात् अस्यापत्यम् इः इत्यादौ अदन्तप्रातिपदिकाभावादिज् न स्यात् यतो हि अत इज्<sup>6</sup> सूत्रे येन विधिस्तदन्त्यस्य<sup>7</sup> सूत्रेण तदन्तविधौ अत इति विशेषणत्वात् प्रातिपदिकं विशेष्यमिति कृत्वा सूत्रार्थः एवं फलति षष्ठ्यन्तह्रस्वान्ताकारान्तप्रातिपदिकात् अपत्यार्थे इज् स्यादिति। प्रकृते अशब्दे अदन्तत्वाभावात् इज् प्रत्ययो न स्यात्। अतः परिभाषारब्धा व्यपदेशिवदेकस्मिन्। निमित्तसद्भावात् विशिष्टोपदेशः – मुख्यो व्यवहारो यस्यास्ति स व्यपदेशी। यस्तु व्यपदेशहेत्वभावादविद्यमानव्यपदेशोसहायः सः तेन तुल्यं वर्तते। कार्यं प्रतीत्येकस्मिन्नसहायेऽपि तत्कार्यं कर्तव्यमित्यर्थः। अत्र एकस्मिन् – असहाये, व्यपदेशिवत् – मुख्यव्यवहारवत् कार्याणि क्रियेरन् इत्ययं सामान्योऽर्थः लभ्यते। व्यपदेशः-विशिष्टः अपदेशः अस्यास्तीति व्यपदेशी तेन तुल्यं व्यपदेशिवत्। अस्याः परिभाषायाः स्वीकारे दक्षस्यापत्यं दाक्षिः इत्यत्र यथा दक्षशब्दात् इज् – प्रत्ययो भवति तद्वत् अ इति असहायवर्णादापि दाक्षिवत् मुख्यकार्यं प्रवर्तते। तेन अस्यापत्यम् इः इति रूपसिद्धिर्भवति।

### परिभाषायाम् एकस्मिन् पदप्रयोजनम्

परिभाषायाम् एकस्मिन् ग्रहणात् असहायस्य एव ग्रहणम्। तेन सभासन्नयन इत्यत्र अकारः असहायो नास्ति किन्तु ससहाय एव अतः वृद्धाच्छः<sup>8</sup> इति सूत्रेण छ-प्रत्ययो न। एवमेव दरिद्रा धातावपि रेफोत्तरस्य इकारस्य वर्णानां मध्ये उच्चारितत्वात् नान्तत्वम्। अतः इकारान्तलक्षणोच्च प्रत्ययो न भवति नो चेत् एरच्<sup>9</sup> इति सूत्रेण अच्- प्रत्ययः

स्यात्। अत एव हरि+सु –हरिषु इत्यादौ पदत्वं न। यतः ससहायत्वात् तदादितदन्तधर्मः केवलं सु इत्यस्मन्नतिदेष्टुमशक्यत्वात्। तस्मात् सु इत्यस्य पदसंज्ञाभावे सात्यदाद्योः<sup>10</sup> सूत्रेण घत्वनिषेधो न।

### परिभाषासिद्धिः

प्रकृतपरिभाषा लोकन्यायसिद्धा। तद्यथा लोकेपि बहुपुत्रसत्वे नैकस्मिन् ज्येष्ठत्वकनिष्ठत्वादिव्यवहारोयं मे ज्येष्ठः कनिष्ठो मध्यमः इति किन्त्वेकपुत्रसत्वे एव। अतः न केवलमियं शास्त्रीयकार्यस्यैवातिदेशं करोति, अपित्वशास्त्रीयातिदेशमपि। अशास्त्रीयातिदेशस्य फलम्

अशास्त्रीयातिदेशेनैव इयाय रूपसिद्धिः। अत्र इण् – गतौ धातोः लिटिप्रथमपुरुषैकवचनविवक्षायां तिपि परस्मैपदानां णलतुस्थल्युसणत्वमाः<sup>11</sup> इति तिपः स्थाने णलादेशः। ण ल् अनयोः अनुबन्धलोपे इ+अ इत्यवस्थायां लिटि धातोरन्यासस्य<sup>12</sup> इति सूत्रेण द्वित्वे इ इ+अ इति जीते पूर्वोभ्यासः<sup>13</sup> सूत्रेण अभ्याससंज्ञायाम् अचो ङिति<sup>14</sup> इति सूत्रेण वृद्धौ अयादेशे च इ आय इति जाते अभ्यासस्यासर्वो<sup>15</sup> सूत्रेण अभ्यासस्य इवर्णस्य इयङादेशेनुबन्धलोपे इयाय इति रूपं सिध्यति। अत्र इ+ उ इत्यवस्थायामिकारस्य द्वित्वमिष्टम्, परन्तु एकाचो द्वे प्रथमस्य<sup>16</sup> इति सूत्रे एकोच् यस्मिन् इति व्याख्यानात् इकारः न कस्यापि अल्लसमुदायस्य अच्, अपि तु एक एव अच् स्वतन्त्ररूपेण। अतः द्वित्वं न स्यात् इत्याशङ्कायां प्रकृतपरिभाषया एकाचत्वरूप – अशास्त्रीयातिदेशात् इकारोपि एकाच् इति मत्वा तस्य द्वित्वं क्रियते तस्मात् इयाय इति रूपं सिध्यति। एवमेव भवति इत्यादौ भू-धातोः लटि तिपि शपि भू+अ+ति इति जाते भकारोत्तरवर्तिनः ऊकारस्य गुणः कर्तव्यः, परन्तु यस्मात्प्रत्ययविधस्तादिप्रत्ययेङ्गम्<sup>17</sup> इति सूत्रेण भू+अ इत्यत्राङ्गसंज्ञा। अतः भूमात्रस्याङ्गसंज्ञाभावे गुणो न भवेत्, इष्यते च गुणः। अतः प्रकृतपरिभाषया अशास्त्रीयातिदेशात् व्यपदेशिवद्भावेन भू इत्यस्याङ्गत्वं विधाय गुणस्ततश्चावादेशे भवति इति रूपसिद्धिः। पूर्वोक्तरीत्या इयान् इत्यादावपि अशास्त्रीयातिदेशः। इदम् शब्दात् इदं परिमाणमस्येत्यर्थे किमदभ्यां वो घः<sup>18</sup> इति सूत्रेण वतुप्- प्रत्यये, अनेनैव सूत्रेण वकारस्य घादेशे इदम्+घत् इति जाते आयनेयीनीयियः फटखल्ल्यां प्रत्ययादीनाम्<sup>19</sup> इति सूत्रेण घस्य इयादेशे इदम्+इयत् जाते इदङ्किमोरीः<sup>20</sup> सूत्रेण इदम् ईशादेशे अनुबन्धलोपे ई+इयत् इत्यत्र यस्येति च<sup>21</sup> सूत्रेण ईलोपे इयत् – इति प्रत्ययमात्रस्य प्रातिपदिकत्वात् स्वादिकार्ये इयान् इति रूपम्। प्रकृते इयदितिप्रत्ययमात्रमस्ति, तस्य कार्यकालपक्षे प्रातिपदिकसंज्ञा इष्यते अतः अनया परिभाषयात्र तद्धितान्ततदादित्वाशास्त्रीयधर्ममतिदिश्य प्रातिपदिकत्वं साध्यते। एवञ्चोपर्युक्तविवरणेन ज्ञायते यदनया परिभाषया अशास्त्रीयधर्मस्याप्यतिदेशो भवतीति।

### इयाय इत्यत्र कैयटमतम् –

इयाय इत्यत्र द्वित्वसिद्ध्यर्थं मुख्यव्यवहारस्य सादृश्यं नावश्यकमिति। तत्तु अर्थस्य त्यागोपादानाभ्याम् इयाय इत्यादौ इकारे एकाचत्वनिर्देशादेव द्वित्वसिद्धिः। इण्- धातौ अर्थविशिष्टः इ- धातुः अस्ति। तस्मिन् यदा एकाचत्वव्यवहारः आवश्यकः तदानीं तत्रार्थस्य त्वागः कर्तव्यः। एवमचत्वव्यवहारकाले अर्थस्य त्यागेन तथा च एकाचत्वव्यवहारे

अर्थस्योपादानेन इकारे एकाच्चव्यपदेशो भवति। तेन इयाय इत्यादौ अर्थवान् धातुःइ, तस्य इ – वर्णरूपी एकः अच् अवयवः। एतादृशार्थकरणेन एकाच् – व्यपदेशो भवति, इवर्णश्च व्यपदेशी अतः द्वित्वसिद्धिर्जायते इति कैयटाशयः।

### कैयटमतरखण्डनम्

अत्र नागेशः – इयाय इत्यत्र द्वित्वसिध्यर्थं मुख्यव्यवहारस्य सादृश्यं नावश्यकमिति कैयटोक्तिःन साध्वी। भाष्यविरोधापत्तिः। भाष्यकारेण एकपदा ऋक् इत्यादिस्थले व्यपदेशिवद्भावमकृत्वा मुख्यव्यवहारः एवोक्तः, तद्वत् इयाय इत्यादिस्थलेपि अर्थाधारेण एकाच्चव्यवहार एव। वेदे यत् तत् इत्याद्यः ऋचः सन्ति तासां वाचकः एकपदा इति शब्दः। एकपदा इत्यत्र बहुव्रीहिः आश्रीयते एकं पदं यस्याम् ऋचि। इह शङ्का जायते यत् अत्र तु केवलमात्रपदमस्ति अतः कथंकारम् एकपदा ऋक् इति वक्तुं शक्येत एवमाशङ्कायां भाष्यकारः समाधत्ते- अत्र एकपदं स्वस्मिन्नेव वर्तते अतो व्यपदेशिवद्भावस्यावश्यकता एव नास्ति। **मुख्यव्यवहारसत्वात् एकपदा ऋक् इत्यत्र अर्थेन युक्तो व्यपदेशः** इति भाष्यकारेणावादि। ऋक्तवादेरर्थशब्दोभयवृत्तित्वेन तस्याः शब्दमात्ररूपं पदमेकोवयव इत्यर्थः। एवं प्रकारेण इयाय इत्यादिस्थले शब्दस्य त्यागोपादानाभ्याम् एकाच्चव्यवहार एव इति नागेशभट्टः अभिप्रैति।

### सन्दर्भाः

1. परिभाषेन्दुशेखरः 21. तत्रैव 6-4-148
2. अष्टाध्यायी 4-1-95
3. तत्रैव 1-4-18
4. तत्रैव 6-4-148
5. तत्रैव 7-1-117
6. तत्रैव 4-1-95
7. तत्रैव 1-1-72
8. तत्रैव 4-1-114
9. तत्रैव 3-3-56
10. तत्रैव 8-3-14
11. तत्रैव 3-4-82
12. तत्रैव 6-1-8
13. तत्रैव 6-1-4
14. तत्रैव 7-1-115
15. तत्रैव 6-4-78
16. तत्रैव 6-1-1
17. तत्रैव 1-4-13
18. तत्रैव 5-2-40
19. तत्रैव 7-1-2
20. तत्रैव 6-3-90

### सन्दर्भग्रन्थसूची –

1. अष्टाध्यायी- संपादकः प्रो.गोपालदत्तपाण्डेयः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. परिभाषेन्दुशेखरः- विश्वनाथ मिश्रः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
3. परिभाषेन्दुशेखरः- संपादकः श्रीपादसत्यनारायणमूर्तिः, राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नवदेहली
4. महाभाष्यम्- संपादकः गुरुप्रसादशास्त्री, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली



## वेदान्त दर्शन : एक परिचय

ललित किशोर शर्मा

वेदान्त दर्शन भारतीय संस्कृति का मौलिकभूत है। वेदान्त दर्शन के सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व के लिए उपादेय है। विश्व शान्ति एवं दुःखों से निवृत्ति के लिए वेदान्त दर्शन एक मात्र शरणस्थली है। विश्व में व्याप्त विविध समस्याओं का निराकरण अध्यात्म के द्वारा ही सम्भव है। इसी अध्यात्म का विषय वेदान्त दर्शन में ही निहित है। वस्तुतः वेदान्त व्यावहारिक धर्म है, वेदान्त विश्व के प्रत्येक जीव में, प्रत्येक प्राणी में विद्यमान ब्रह्म की सत्ता का दिग्दर्शन कराता है। वेदान्त कहता है – विषय का सुख क्षणिक होता है परन्तु आध्यात्मिक सुख सच्चा एवं चिरस्थायी होता है। इसी तथ्य को प्रकट करना इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

नर से नारायण बनने का अमूल्य आदर्श वेदान्त हमारे सामने प्रकट करता है – “वसुधैव कुटुम्बकम्” यही वेदान्त की शिक्षा है। क्षुद्र स्वार्थ की भावना से त्रस्त तथा परास्त मानव समाज के कल्याण के लिए वेदान्त के अमृतमय वचन ही एकमात्र उपाय है।

ईश्वर को जाने बिना मुक्ति सम्भव नहीं है, गीता कहती है –

**उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेप्युदाहृतः।**

**यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः।।<sup>3</sup>**

अर्थात् इन दोनों से उत्तम तो अन्य ही है, जो तीनों लोको में प्रवेश करके सबका धारण पोषण करता है। वह अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा इस प्रकार कहा गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् कहती है।

**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म।<sup>4</sup>**

अर्थात् वे सब भूतप्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होगा जिसकी सत्ता से जीवित रहते हैं और विनाश के समय जिसमें प्रवेश कर जाते हैं वह ब्रह्म है। वेदान्त दर्शन में न्याय, श्रुति एवं स्मृति की प्रधानता कही गई है। उसी को आधार मानकर न्याय प्रस्थान, श्रुतिप्रस्थान, स्मृतिप्रस्थान ये तीन प्रस्थान त्रयी ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र, दशोपनिषद् तथा श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से विख्यात हुए। इन्हीं को आधार मानकर पाँच सम्प्रदाय प्रचलित हुए।

<sup>3</sup> श्रीमद्भगवद्गीता-15/17

<sup>4</sup> तैत्तिरीयोपनिषद्

1. अद्वैतवाद 2. विशिष्टाद्वैतवाद 3. द्वैतवाद 4. द्वैताद्वैतवाद 5. शुद्धाद्वैतवाद तथा अचिन्त्यभेदाभेदवाद

1. **अद्वैतवाद** - दृश्यजगत् केवल प्रतीतिमात्र है। यह प्रतीति अज्ञानता से है। एक ही निर्गुण, निराकार, निर्विकार चेतन सत्ता है। दृश्यजगत् उससे पृथक् नहीं है। वह उसी ब्रह्मसत्ता में अध्यस्त है। समस्त दृश्य परिणामी और अनित्य है। सबका द्रष्टा एक है। ज्ञेय भी ज्ञाता का सोपाधिक रूप है। नाम तथा रूप – ये मन की वृत्तिया हैं। जगत् नामरूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं। नाम एवं रूप की प्रतीति माया से है। माया तो अनिर्वचनीय है किन्तु अनादि होते हुए भी ज्ञान के द्वारा उसका अन्त होने से उससी सत्ता नहीं है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। उसमें सजातीय, विजातीय अथवा स्वगत किसी प्रकार का कोई भेद नहीं है।

शङ्कराचार्य जी जगत् की प्रतीति रस्सी में सर्प के भ्रम के तुल्य विवर्त से कही है। अद्वैतवाद में दृष्टि-सृष्टिवाद और अजातवाद जैसे कई प्रक्रियाभेद हैं। संसार की प्रतीति को लेकर ही ये सिद्धान्त निर्मित हैं। इनमें बौद्धदर्शन के तर्कों का अनेक बार प्रकारान्तर से उपयोग हुआ है। ब्रह्म की अद्वैत सत्ता और जगत् के मिथ्यात्व को सभी मानते हैं। इसलिए प्रक्रिया भिन्न होने से कोई मौलिक भेद उनमें नहीं होता।

जगत् प्रतीति है, मिथ्या है, अध्यास या विवर्त है – यहाँ तक तो शास्त्र का पूर्वोक्त समग्र दर्शन ही है। भगवान् शङ्कराचार्य ने व्यावहारिक एवं पारमार्थिक – दो प्रकार के सत्य का प्रतिपादन किया है। उन्होंने **‘ईश्वरानुग्रहादेव पुमान् द्वैतवासनः’** कहकर ईश्वरीय कृपा अपेक्षित मानी है एवं उपासना, भक्ति तथा आचार को महत्त्व दिया है। संसार प्रतीति है, वह कल्पना है पर समष्टि के संचालन की कल्पना। जीव की कल्पना उसमें ‘अहं’ और ‘मम’ रूप ही है। अतः ‘अहं’ और ‘मम’ को छोड़ना तो हमारे वश में और समष्टि लय समष्टि कर्ता के वश में। जब पारमार्थिक सत्य किसी की प्रतीति को आत्मसात् कर लेता है, तब व्यावहारिक सत्य के बन्धन उसके लिये नहीं रह जाते – वैसे जो रुपये के मोह से ऊपर उठ गया, उसके लिये नोट कागज के टुकड़े हैं।

बौद्धधर्म अपने वज्रयान के स्तर पर उतर आया था। वामतन्त्र साधनाएँ भी अनाचार में बदल गयी थीं। तर्क ने दर्शन को जडवादी बना दिया था। इसी वातावरण में भगवान् शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। वैभाषिक बौद्धदर्शन का आधार जड को सत्य मानना था, भगवान् शङ्कराचार्य ने प्रतिक्रिया उत्थित की। जड दृश्य केवल प्रतीति है। बौद्धदर्शन के मध्याचार से मत मिलता है। बौद्धदर्शन से शाङ्करदर्शन का भेद यह है उसमें श्रुति, शास्त्र एवं अस्तिकता की प्रतिष्ठा के साथ ज्ञान को आचार की अपेक्षा महत्ता दी गयी। उस समय जो वामाचार, कापालिक आचार आदि उच्छृङ्खलताएँ आचार के नाम पर प्रश्रय पा गयी थीं, उनका निषेध आवश्यक ही था। मानव को उस समय रुककर शुद्ध विचार करना परमावश्यक था।

2. **विशिष्टाद्वैतवाद** – अद्वैतवाद साधन-चतुष्टय, श्रवण-मनन-निदिध्यासन से अपरोक्षानुभूति का प्रतिपादन लेकर प्रवृत्त हुआ किन्तु मानव-प्रकृति तो अधोगामिनी है। आचार से ज्ञान की श्रेष्ठता के प्रतिपादन ने केवल बौद्धिक ज्ञान को महत्त्व दे दिया। आचार छूट गया। इन्द्रियों के विषयों का सेवन तो व्यवहार माना जाने लगा और

बुद्धि को महत्ता मिल गयी। अद्वैतबोध भी अनुभूति से उठकर दूसरी विद्याओं की भाँति एक बौद्धिक ज्ञान हो गया। जीव नित्यमुक्त शुद्ध ब्रह्म है, उसे कोई आचार बाधित नहीं करता। विषयोपभोगादि तो व्यवहार है, कल्पना है, अज्ञान की प्रतीति है। सदाचार, उपासनादि सब अज्ञान हो गये। देहात्मवादी नास्तिक तथा बौद्धिक वेदान्ती में केवल यह अन्तर रहा कि एक मूलतत्त्व को जड़ कहता है, दूसरा चेतन। शेष मान्यताएँ दोनों की एक हो गयीं। 'कलौ वेदान्तिनः सर्वे' शास्त्र ऐसे ही वेदान्त को कलिका धर्म बतलाता है। आज वह प्रत्यक्ष है।

व्यवहार एवं व्यावहारिक सुख जब तक अपेक्षित हैं, जब तक उनकी प्रतीति है, तब तक जिसकी कल्पना ने उनका सर्जन किया है, हम उसके अधिकार क्षेत्र में हैं। यदि ये भोग हमारी कल्पना होते तो हमें उनको पाने का प्रयत्न न करना पड़ता। हम कल्पना से उनकी सृष्टि कर लेते। जिसके कल्पना क्षेत्र में हम व्यवहार चलाते हैं, वह हमारा शास्ता है। हम उसकी कृपा से उस क्षेत्र से बाहर हो सकते हैं। उसके क्षेत्र में रहकर उसके नियमों को भंग करने पर दण्ड मिलेगा ही। इस सत्य एवं आचार की प्रतिष्ठा के लिये महाप्रभु रामानुजाचार्य ने विशिष्टद्वैत-मत का प्रवर्तन किया।

चित्त-अचित्त-विशिष्ट समग्र तत्त्व ही ब्रह्म है। ब्रह्म के चेतन अंश से चित्त (जीव) अचित्त से जड़ (प्रकृति) हुई है। ब्रह्म जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण है। जीव ब्रह्म ही अंश है। भगवान् नारायण ही इस समस्त जड़चेतन सत्ता के स्वामी हैं। वे निखिलगुणगणैकधाम नित्यवैकुण्ठविहारी हैं। उनकी शरण में जाने से ही जीव की मुक्ति होती है। प्रपत्ति (शरणागति) ही मोक्ष का सर्वोत्तम साधन है। जीव ज्ञाता है। ज्ञान जीव का धर्म है। वह ज्ञानस्वरूप नहीं है। जीव और ईश्वर नित्य भिन्न हैं। यथावस्थित व्यवहारानुगुण ज्ञान ही प्रमा है। निर्विकल्प और सविकल्प दोनों प्रकार के ज्ञान विशेषतया तत्त्व के ही होते हैं। जिसमें कोई विशेषता न हो, उसका ज्ञान नहीं होता। आत्मा, मन, इन्द्रिय तथा विषय-संयोग – ये ज्ञान के हेतु हैं। जो कर्म-सम्बन्धी ज्ञान से सम्पन्न है, वही ब्रह्मजिज्ञासा अधिकारी है।

'ब्रह्म सगुण एवं सविशेष है, क्योंकि उसका ज्ञान होता है।' यह श्रुति का मत है। जगत् ब्रह्म का परिणाम है। उपासना से अज्ञान की निवृत्ति ही जीव का प्रयोजन है। ब्रह्म श्रीनारायण अपनी योगमायाशक्ति से समन्वित रहकर कर्मफलदाता, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी ईश्वर से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति संहार के कारण हैं। पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा इन विग्रहों में जीव को उनकी उपलब्धि होती है। उन श्रीनारायण के अवतार कर्म के कारण नहीं होते। वे स्वेच्छा से ही अवतार धारण करते हैं। उनमें विकार नहीं होता। जीव, चेतन, अणुरूप तथा ब्रह्म का शरीर है। जीव और ब्रह्म में स्वगत-भेद है। जीव और ब्रह्म दोनों चेतन, स्वयंप्रकाश, ज्ञानाश्रय, नित्य, देहादि से भिन्न हैं। जीव, कर्ता, भोक्ता, ब्रह्म का शरीर तथा दास है। जीव की ब्रह्म से कभी अभिन्नता नहीं होती। अप्राकृत चिन्मय शरीर से वैकुण्ठधाम में निवास की प्राप्ति ही मुक्ति है। यह मुक्ति ब्रह्म की कृपा से उनकी प्रपत्ति द्वारा ही प्राप्त होती है।

विशिष्टद्वैतमत शरणागति प्रपत्ति का मार्ग है। आराध्य के अनुकूल का संकल्प और प्रतिकूल का त्याग प्रपत्ति का स्वरूप मानने का यह निर्विवाद अर्थ हो गया कि शास्त्र विपरीत समस्त कर्म त्याज्य हैं और शास्त्राचार ही विहित है क्योंकि शास्त्र ही भगवान् के आदेश हैं। शास्त्र के अतिरिक्त हम उनकी अनुकूलता जान सकें, इसका कोई उपाय नहीं। नियम उच्च हैं किन्तु मनुष्य का स्वभाव नियम का दुरुपयोग करना – हासोन्मुख होना है। आचार्यमत के बदले यह आचारियों का मत कहा जाने लगा। प्रपत्ति – शरणागति का मुख्य अंश – भाव गौण हो गया और क्रिया ही प्रधान हो गयी। शास्त्र का ब्राह्म्याचार अपनी सीमा को पार कर गया और भाव की उपेक्षा हो गयी। फलतः उपासना, जो मुख्य लक्ष्य थी, विशेष प्रकार की क्रियाओं में बद्ध हो गयी। इस स्थिति में शेष वैष्णव मतों का प्रसार हुआ।

3. **द्वैतवाद** – महाप्रभु श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रसारित द्वैतवाद पूर्णप्रज्ञदर्शन कहा जाता है। इस मत का संक्षिप्त सार है – 'जीव और ब्रह्म – ये दो नित्य पृथक् सत्ताएँ हैं। जीव अणु एवं दास है और ब्रह्म सगुण, सविशेष, स्वतन्त्र। जीव का परमार्थ है सालोकादि मुक्तियों में किसी की प्राप्ति। जीव एवं ब्रह्म में साम्यबोध भ्रम एवं अपराध है। दृश्य जगत् सत्य से अभिन्न है। विकारी और परिवर्तनशील होने पर भी जगत् मिथ्या नहीं है। क्योंकि असत्य का ज्ञान नहीं हुआ करता। ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय के आधीन है। ज्ञान की चिन्तन से भिन्न स्थिति नहीं है। अतः ज्ञान सदा सविकल्प ही होता है। ज्ञान आपेक्षिक है। ज्ञान ही ज्ञेय का प्रतिपादक एवं प्रधान प्रमाण है। ब्रह्म शास्त्रैकगम्य है। वह पूर्णतः वाणी का विषय नहीं होता। भाववस्तु, गुण, क्रिया, जाति, विशेषत्व, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य और अभाव – ये दस पदार्थ हैं। भाववस्तु दो प्रकार की है – चेतन और अचेतन। परमतत्त्व ब्रह्म भगवान् विष्णु हैं। भक्ति, त्याग, ध्यान – ये साधन हैं जीव के लिये, जिनसे वह मुक्त होता है।'
4. **द्वैतद्वैतवाद** – महाप्रभु श्रीनिम्बार्काचार्य ने द्वैत एवं अद्वैत दोनों का सामञ्जस्य करने वाला प्रकाश जगत् को दिया – जगत् ब्रह्म का परिणाम है। ब्रह्म में परिणाम होने पर भी वह विकृत नहीं होता। ब्रह्म सर्वशक्तिमान है। उसका सगुण भाव मुख्य है। जीव तथा जगत् – ये दोनों ब्रह्म के परिणाम हैं। ये ब्रह्म से पृथक् भी हैं और अपृथक् भी। जगदतीरूप में ब्रह्म निर्गुण है। ब्रह्म जगत् का निमित्त उपादान कारण है। जीव ब्रह्म का अंश है, उससे भिन्न भी और अभिन्न भी। जीव का स्वरूप अणु है। मुक्त जीव अपनी तथा जगत् की ब्रह्म से अभिन्नता का अनुभव करता है। मुक्ति साधन केवल उपासना है।
5. **शुद्धद्वैतवाद** – महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य ने जगत् के मिथ्या का खण्डन करके उपासना की प्रतिष्ठा की है। श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं। वे निर्गुण, निर्विशेष, कर्ता, भोक्ता, निर्वाकार, गुणातीत, समस्त विरुद्ध धर्मों के आश्रय, संसार के धर्मों से रहित तथा जगत् के उपादान हैं। जगत् सत्य है। वह कार्य है। ब्रह्म से अभिन्न उसकी परिणति है, क्योंकि ब्रह्म अविकृत परिणामी है। जगत् में पदार्थों का आविर्भाव एवं तिरोभाव होता रहता है। जीव शुद्ध तथा अणुरूप है। जीव के लिये ब्रह्म से प्रीति करना ही श्रेष्ठ मार्ग है। इस प्रीति की चरम परिणति है

श्रीकृष्ण में पतिभाव की प्राप्ति। यह भगवदनुग्रह (पुष्टि) से होती है। ब्रह्म का विवेचन शास्त्र के द्वारा ही सम्भव है।

6. **अचिन्त्यभेदाभेदवाद** – श्रीकृष्ण सत्य हैं, इतना जानना ही जीव के लिये पर्याप्त है – महाप्रभु श्रीचेतन्यदेव के इस भाव को श्रीगोस्वामिपादों ने अचिन्त्यभेदाभेदवाद का दार्शनिक रूप दिया। महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत को गीता, उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्रों का भाष्य माना था, अतः प्रस्थानत्रयी पर भाष्य न करके भागवतरूप भाष्य से ही यह दर्शन पुष्ट हुआ है। बहुत पीछे जाकर ब्रह्मसूत्र पर भाष्य भी रचा गया।

ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल और कर्म – ये पाँच तत्त्व हैं। शास्त्र वाचक हैं और ईश्वर वाच्य। ईश्वर का ज्ञान शास्त्र से ही होता है। ब्रह्मतत्त्व सगुण सविशेष श्रीकृष्ण ही हैं। स्वतन्त्र, सर्वज्ञतादि समस्त गुणों से युक्त, जीव को भोग एवं मोक्ष देने वाले हैं। वे निर्गुण हैं, क्योंकि उनमें कोई प्राकृत गुण नहीं। उनमें सभी अप्राकृत गुण हैं। संवित, सन्धिनी और ह्लादिनी – ये तीन शक्तियाँ हैं उन सच्चिदानन्द ब्रह्म श्रीकृष्ण की। जगत् ब्रह्म का परिणाम है। यह सत् किन्तु अनित्य है। ईश्वर, जीव, काल और प्रकृति – ये चार तत्त्व नित्य हैं। प्रकृति ब्रह्म की शक्ति है, त्रिगुणात्मक है, नित्य है। कर्म जड है। वे ईश्वर की शक्तिरूप हैं। जीव अणु है। वह ब्रह्म का भोग्य है। प्रेम द्वारा श्रीकृष्ण का साध्वि प्राप्त कर लेना ही जीव की मुक्ति है।

अद्वैतवाद के अतिरिक्त शेष सब वैष्णव दर्शन उपासना की सिद्धि के लिये हैं। अतः इनमें जगत् की सत्यता तथा ब्रह्म के सविशेष रूप का प्रतिपादन है। प्रस्थानत्रयी के ही ये सब भाष्य हैं, अतः भाष्यरूप दर्शनों में मौलिक समानता तो होनी ही चाहिये। आचार्यों ने साधनों की पुष्टि के लिये दर्शन का विस्तार किया है। अद्वैतवाद ज्ञानयोग की पुष्टि के लिये और वैष्णवदर्शन उपासना की पुष्टि के लिये हैं। इनमें से प्रत्येक सम्प्रदाय अपनी अनादि परम्परा मानता है। आद्याचार्य का अर्थ केवल उस मत का प्रस्थानत्रयी भाष्य करके प्रचार करने वाले महापुरुष से है। उन्होंने सिद्धान्त की सृष्टि की, ऐसा न तो वे मानते और न उनके अनुयायी। सत्य दस बीस प्रकार कका नहीं हो सकता, किन्तु जब हम वाणी में उसे व्यक्त करते हैं, तब हमारे दृष्टिकोण एवं वाणी के भेद से वह विविधरूप हो जाता है। अचिन्त्यरूपा मायाशक्ति, अवाञ्छनसगोचर परमतत्त्व – ये सबको मान्य हैं। इनकी उपलब्धि, इनकी अनुभूति मार्ग भिन्न-भिन्न होंगे अधिकारी के अनुरूप। जिस अधिकार का प्रतिपादन होगा, उसके दृष्टिकोण से तत्त्व का व्यक्तीकरण भी होगा। जैसे अधिकार-भेद बने पुराणों में परमतत्त्व कहीं शिव, कहीं शक्ति, कहीं विष्णु के रूप में सर्वोपरि प्रतिपादित हुआ है, वैसे ही आचार्यों के सिद्धान्तों का भेद भी अधिकारपुष्टि के लिये है। उनमें वस्तुतः कोई अन्तर नहीं।

7. **शैवदर्शन** – निर्विशेष ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले दर्शन को छोड़ देने पर सविशेष – ब्रह्म-प्रतिपादक दर्शनों के शैव एवं वैष्णव – दो मुख्य भेद रह जाते हैं, यों तो सौर, शाक्त, गाणपत्य – तीन और भेद हैं। इनमें वैष्णव-दर्शनों की चर्चा हो चुकी है। अद्वैतवाद निर्विशेष ब्रह्म का प्रतिपादक दर्शन है। उसमें शैव एवं वैष्णव – दोनों प्रकार के उपासक हुए हैं। आजकल शिवोपासना अद्वैतवादियों में मुख्यता प्राप्त कर चुकी है, किन्तु आदि से

कभी भी वैष्णव उपासना न तो अद्वैतवाद से विरोध था और न श्रीकृष्ण के उपासकों का अद्वैतवादियों में अभाव ही। शैव और वैष्णव दोनों दर्शनों में ब्रह्म को सविशेष मानने पर शक्ति की महत्ता मानी गयी है।

वैष्णव-दर्शन तथा अद्वैतवाद की प्रवृत्ति वेदों को परम प्रमाण मानने की है। उपासना के लिये निगम (वेदादि शास्त्रों) के साथ आगम (तन्त्रों) का दक्षिणाचार भी सर्वत्र स्वीकार किया गया है, किन्तु परम प्रमाण श्रुति ही रही है। शैव-दर्शन आगम (तन्त्र) को निगम के समान ही परम प्रमाण मानकर प्रवृत्त हुए हैं। उपासना के क्षेत्र में उनकी प्रवृत्ति आगम की ओर है। वे निगम को गौण मानते हैं। आगम के दक्षिणाचार के साथ उन्होंने वामाचार को भी स्थान दिया है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वेदान्त विचार चूडामणि:-श्री सरस्वती वेद शास्त्रसंरक्षिणी सभा, कनकपुर, बेङ्गलुरु, संस्करण-२०१०
2. अद्वैत और विशिष्टाद्वैत वेदान्त-दीनानाथ सिंह, नार्दन बुक सेण्टर, नई दिल्ली-२००७
3. वेदान्त में ब्रह्म का स्वरूप एवं जीवन दर्शन- राममूर्ति शर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली-१९९७
4. सिद्धान्तलेशसंग्रह-पंडित श्रीमूलशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००७
5. शंकराद्वैत के प्रमुख सिद्धान्तों का पारम्परिक विश्लेषण-तारादत्त, नाग पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण, २००२

## गृहवास्तुप्रकरणे सोपानप्रक्रियाया मीमांसा

हरिनारायणधरद्विवेदी

ज्योतिषशास्त्रं स्वकीयमूलरूपेण अत्यन्तं पुरातनमस्ति। अस्य व्यापकत्वं प्रभावश्च वैदिकमन्त्रेषु दृग्गोचरीभवति। समाजे अस्य उच्चसिद्धान्तानां समादरं प्रभावश्च सर्वत्रैवास्ति। शास्त्रस्यास्य परम्परा अतीव समृद्धा। क्षेत्रेऽस्मिन् सिद्धान्तज्योतिषेण सह फलितज्योतिषस्य गणितशास्त्रस्य च घनिष्ठः सम्बन्ध अस्ति। वेदेषु सूर्य-चन्द्रमसोः तथा चापरेषां नक्षत्राणां कृते स्तुतिपरकक्रांचां गुणगानं कृतं वर्तते। एषु मन्त्रेषु नक्षत्राणां विषये वैदिकऋषीणामुत्सुकताया भावः अत्यन्तं मनोहरं रहस्यात्मकं च वर्तते। अनेनैव अनिवार्यावश्यकताकारणेनाग्रे पुरष्कृत्येदं शास्त्रं षड्दाङ्गेषु स्थानं प्राप।

ज्योतिषशास्त्रं स्कन्धत्रये विस्तृतं जातं यथा-होरा, गणितं, संहिता प्रश्ननिमित्तं च। इदं शास्त्रं प्रत्येकेषु क्षेत्रेषु लोकप्रियं प्रतिभाति। संहिताज्योतिषशास्त्रे-शोधन-दिकशोधन-शल्योद्धार-मेलापक-आयाद्यानयनम्-गृहोपकरण-गृहारम्भ-गृहप्रवेश-मुहूर्तगणना-उल्कापात-अतिवृष्टिविषयाणां ग्रहाणामुदयास्तानां विचारः तथा ग्रहणफलादीनां विवेचनं भवति। प्रश्नज्योतिषशास्त्रे प्रश्नोत्तरं प्रश्नलग्नस्वरज्ञानादीनां विधा आयायन्ति। प्रश्नकर्तुः हावभावविचारचेष्टादीनामाधारे निष्कर्षः निस्तार्यते।

गृहनिर्माणकार्ये ज्योतिषशास्त्रं स्वकीयां भूमिकामत्यन्तं महत्वपूर्णतया प्रदर्शयति। गृहनिर्माणे सोपानस्य अत्यन्तं महत्वपूर्णं स्थानं भवति। इदं भवनस्य प्रथमलात् अपर तले गमनागमनस्योत्तमं साधनं भवति। आशयमिदं स्पष्टयितुमनेकेषु ग्रन्थेषु स्वरूपं निरूपितं वर्तते। समराङ्गणसूत्रधारे इदम् आरोहणमार्गं निगद्यते। यथा-

तस्यारोहणमार्गो यः सोपानं तत् प्रचक्षते<sup>5</sup>

<sup>5</sup> समराङ्गणसूत्रधारे (१८/१०)

मानसारानुसारं देवालये मनुष्यगृहे तथा च दीर्घेषु भवनेषु आरोहणावरोहणस्य कृते सोपानस्य प्रयोगः क्रियते। यथा-

देवानां मानुषाणां च हर्म्यादीनाञ्च सर्वशः।

आरोहावरोहार्थं च सोपानलक्षणं तथा।<sup>6</sup>

विश्वकर्मवास्तुशास्त्रानुसारं तलेषु आरोहणार्थम् इदं दृढसन्धियुक्तमेकं निर्माणमस्ति। यथा-

भौमाद्यारोहणार्थं यत् कल्पनं दृढसन्धिकम्।

सोपानमिति तत् प्राहुर्मुनयः शास्त्रपारगाः<sup>7</sup>

सोपानस्य निर्माणं प्रतितलं क्रियते-यथा- तले तले तु सोपानं प्रयुञ्जीत विचक्षणः।<sup>8</sup> सोपानस्य निर्माणकार्ये शिला-काष्ठ-इष्टिका-लौहपट्टिकानाञ्च प्रयोगः क्रियते। येषु शिलामयसोपानं देवनागरे तथा च विभिन्न प्रकाराणां सोपानानि मनुष्यस्य आवासे प्रशस्तानि निगद्यन्ते। सोपानस्य प्रारम्भे तथा चान्ते प्रवेशनिष्कासस्य हेतोः द्वारस्य यथावसरम् उपद्वारस्य मध्यभागे विश्रामकक्षस्य निर्माणं क्रियते। सोपानानां भित्तिषु उत वा मध्ये उभयपक्षे रम्यदृश्यानामङ्कनं कर्तुं शक्यते। यथा-

दैवे शिलामयं शस्तं मानवेऽन्यप्रकल्पने

द्वादशाङ्गलकं वाऽपि षोडशाङ्गुलकं क्वचित्।

सार्द्धहस्तं प्रमाणं तदौन्नत्यं समुदीरितम्।

द्विहस्तं वा त्रिहस्तं वा क्वचित्तदधिकं तुवा।

तदङ्गानां मिथो बद्धं प्रान्तकीलादिघट्टितम्।

प्रान्तशृङ्खलिकायुक्तं दारुपट्टयुतं क्वचित्।

<sup>6</sup> मानसार, ३३/४३

<sup>7</sup> वास्तुप्रकार- २५/१

<sup>8</sup> मयमतम्, २१/४६

भूलम्बं भित्तियुक्तं वा क्वचित् सुषिरभागपि।  
 दारुपट्टा तदाढ्यं वा मिथः कीलादिघट्टितम्॥  
 द्वारोपद्वारयुक्तं वा मध्यविश्रान्तिकस्थलम्।  
 सोपानकल्पनं प्रायः यथामानं यथाबलम्॥  
 मध्ये वा पार्श्वयोः प्रायः पद्मचित्रादिकल्पनम्।  
 दीपाट्टालकयुक्तं वा वितानादिविभूषितम्॥  
 श्लक्ष्णतं टङ्कवेशेन क्वचिद् वर्णादिभूषितम्<sup>9</sup>

प्रथमसोपानात् अपरसोपानमध्ये अधिकमन्तरं नापेक्ष्यते न तु सोपानम् अधस्तनं स्यात्। यथा- नाति धीर्घान्तरालं च नातिनीचमपि क्वचित्<sup>10</sup> शिल्परत्ने एवं तन्त्रसमुच्चयानुसारेण सोपानानि उपरिद्वाराद् प्रारभ्य क्रमशः अधस्तलपर्यन्तं निर्मितानि भवन्ति। देवालयेषु सोपानस्य निर्माणकार्यं समानशिलाभिः समसंख्यायां भवति। यथा-

अग्रद्वारभुवङ्गमस्थलसमारब्धान्यधोऽधः क्रमात्।  
 सोपानानि समानि सारशिलया चिन्वीत यावत्तलम्॥  
 अध्यर्द्धद्विगुणान्तदण्डविपुलानि द्वारशाखाद्वयी।  
 पार्श्वोर्ध्वं मकरास्यनिसृतलता रूद्धोभयान्ननिश्चितम्॥<sup>11</sup>

शिल्पग्रन्थेषु विभिन्नानां सोपानानां वर्णनं प्राप्यते। केषाञ्चित् सोपानानां भेदाः इत्थं वर्तन्ते। यथा-सचल सोपानः, इदंचल सोपानमपिनिगद्यते अस्य निर्माणकार्यं शिला-इष्टका उत वा काष्ठैः भवति। यथा-शिलाभिश्चेष्टकैर्वाणि दारुभिः सचलं मतम्<sup>12</sup>

<sup>9</sup> विश्वकर्मवास्तुशास्त्र, ५४/२९

<sup>10</sup> विश्वकर्मवास्तुशास्त्र, ५४/११

<sup>11</sup> शिल्परत्न-पूर्वभागः, २२/१०५

<sup>12</sup> मानसार, ३०/४६

अचलसोपानः-उपर्युक्तैः पदार्थै अचलसोपानस्य निर्माणं क्रियते, तथा चायं क्षुद्रसोपानेन युक्तो भवति। यथा-सर्वशैवाचलं प्रोक्तं क्षुद्रसोपानसंयुतम्<sup>13</sup>

अधिरोगणसोपानमिदं काष्ठद्वयस्थूणयो मध्यतः काष्ठेन निर्मितं भवति<sup>14</sup>

निःश्रेणीकाष्ठनिर्मिते सोपाने यदा पदं विस्तृतं भवति तर्हि तस्य संज्ञा निःश्रेणीरिति भवति। यथा- सा निःश्रेणीरितिप्रोक्ता सोपानैर्विपुलैः पदैः।<sup>15</sup>

त्रिखण्डसोपानम्-सोपानमिदं त्रिखण्डाकारं भवति। त्रिखण्डाकारचितं यत् सोपानं तत् सोपानं त्रिखण्डकम्<sup>16</sup>

शङ्खमण्डलसोपानम्-यस्मिन् सोपाने मूलापेक्षाऽग्रेतनानि सोपानानि क्रमशः संक्षिप्तानि तत् शङ्खमण्डलसोपानमिति कथ्यते। यथा-मूलादग्रं तु संक्षिप्तं क्रमाद् यच्छङ्खमण्डलम्<sup>17</sup>

अर्द्धगोमूत्रसोपानम्-शङ्खमण्डलसोपानं खण्डद्वयेन यदा निर्मितं भवति तर्हि तस्य संज्ञा अर्द्धगोमूत्रमिति भवति। यथा-द्विखण्डं च सोपानमर्द्धगोमूत्रसंज्ञकम्<sup>18</sup>

वल्लीमण्डलसोपानम्-यदा सोपानस्य रचना वृक्षारोहिवल्ली भवति तदा तं वल्लीमण्डलसोपानमिति कथ्यते। यथा-स्यात् वल्लीमण्डलं वृक्षारोहि वल्लीसमक्रियम्। अश्वपादौ परिस्थित्यारोहणं दक्षिणाङ्घ्रिणा<sup>19</sup>

अनेन प्रकारेण अन्येषामपि बहूनां सोपानानां तथा च तेषां प्रकारः विविधग्रन्थेषु उद्धृताः सन्ति। यथा- वेदाग्रसोपानम्, दीर्घवेदाग्रसोपानमित्यादि सोपानानां उल्लेख प्राप्यते।

<sup>13</sup> मानसार, ३०/४६

<sup>14</sup> समराङ्गणसूत्रधार, १८/११

<sup>15</sup> समराङ्गणसूत्रधार, १८/११

<sup>16</sup> शिल्परत्न-पूर्व, २२/१०८

<sup>17</sup> शिल्परत्न पूर्व, २२/१०८

<sup>18</sup> शिल्परत्न, २२/१०८

<sup>19</sup> मयमत, २२/८६

सोपानस्य प्रमाणम्-सोपानस्य निर्माणे केचित् फलकाः शयिता भवन्ति तथा च केचित् स्थिताः भवन्ति। स्थितसोपानफलकस्य एवञ्च शायितसोपानफलकयोः निर्माणकार्यं तयोः शक्त्यनुकूलं कर्तव्यम्। प्रत्येकेषु तलेषु सोपानस्य निर्माणकार्यं नीचस्थितेन सोपानेन दक्षिणदिग् भवति।

तस्य संख्या समावा विषमा प्रादक्षिण्याधिरोहणम्।

तदप्युद्युग्ममेव स्यात् प्रासादे मण्डपेऽपि वा।।<sup>20</sup>

सोपाननिर्माणे निम्नलिखिताः संकेताः अवधारणीयाः-

1. सोपानस्य निर्माणकार्यं सदैव दक्षिणस्यां दिशि करणीयम्।
2. सोपाननिर्माणस्योचितं स्थानं गृहस्य पूर्वस्यां दिशि दक्षिणस्यां उत वा दक्षिणपूर्वकोणे करणीयम्।
3. सोपानं प्रवेशद्वारेण तथा च निष्क्रमणद्वारेण युक्तं निर्मातव्यम्। इदं गृहस्य सुरक्षा दृष्ट्या आवश्यकमस्ति।
4. सोपानस्य उपरितत्वस्य उत वा दक्षिणदिशायाः उद्घाटनं प्रशस्तं भवति।
5. अस्योपरि द्वारं नीचद्वारात् द्वादशभागं उच्चीकरणीयम्।
6. सोपानम् आवश्यकतानुसारं मध्यद्वारम् उपद्वारं च निर्मातुं शक्यते।
7. सामान्यतया मनुष्याणां गृहेषु शिलानिर्मितं सोपानं न युज्यते। इदं कार्यं देवालयेषु उत वा राजभवनेषु प्रशस्तं भवति।
8. सोपाननिर्माणस्य कार्यं काष्ठेन उत वा इष्टिकया करणीयम्।
9. सोपानं काष्ठनिर्मितं भवेत् उत वा इष्टिकानिर्मितं भवेत् अस्य दृढता आवश्यकीभवति।
10. सोपानेषु प्रकाशव्यवस्था अनिवार्या अस्ति। यस्मिन् समये सूर्यस्य प्रकाशः सोपानस्योपरि न स्यात्। तस्मिन् समये दीपकस्य (बल्ब) इत्यस्य व्यवस्था करणीया।
11. सोपानेषु सुन्दरचित्राणामङ्कनं तथा च भित्तिष्वपि चित्राङ्कनं करणीयम्।
12. सोपानोपरि आरोहणसमये साहाय्यार्थं लौहपट्टिकाया निर्माणं कर्तव्यम् अनेन सोपानेषु गन्तृणां साहाय्यं मिलति विशेषरूपेण वृद्धशिश्नां च कृते इदमावश्यकम्।
13. गृहेषु यदा कदा चलसोपानस्यापि आवश्यकता प्रतिभाति। अनेन प्रकारेण इदम् अवधारणीयं यत् प्राचीनभारतस्य वास्तु शिल्पमत्यन्तं उन्नतमासीत्। कालजयिनां मनीषिणां दृष्टिः तथा च तैः निर्धारितं नियमादिकम् अद्यापि तथैव सार्थकमस्ति।

<sup>20</sup> शिल्परत्न, २२/११४

सन्दर्भग्रन्थसूची:-

१. समराङ्गणसूत्रधारः-पुष्पेन्द्रकुमार, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, प्रथमसंस्करण -1998
२. राजवल्लभमण्डनम्-डा. शैलजा पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथमसंस्करण-2001
३. शिल्पप्रकाशः- इन्दिरागान्धी राष्ट्रियकलाकेन्द्र तथा मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रित संस्करण- 2005

## कुमाउनी भाषा और संस्कृत :- अन्तर्संबन्धों की व्याख्या

भुवनचन्द्र मठपाल

प्रस्तुत शोध पत्र में, भारतीय भाषाओं के साथ संस्कृत के अंतर्संबन्ध के सन्दर्भ में कुमाउनी और संस्कृत के अंतर्संबन्ध तथा प्रभाव की खोज ही यहाँ अभीष्ट है। यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाषाओं के बीच आनुवांषिक संबन्ध होते हैं। यदि वे एक दूसरे के निकट का संबन्ध रखती हैं तो यह कहा जा सकता है कि वे एक ही वंश-परम्परा का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस सन्दर्भ में भारतीय भाषाओं के साथ संस्कृत के अंतर्संबन्धों की खोज अत्यन्त दिलचस्प विषय रहेगा। इस दृष्टि से कुमाउनी भाषा जहाँ संस्कृत के साथ अन्तर्गुम्फित है, वहीं अपने वर्तमान समाज एवं संस्कृति को भी समग्रता में समेटे हुए है। तब हमारा कर्तव्य हो जाता है कि समानताओं और विषमताओं का अन्वेषण करें और उन तत्त्वों का पता लगाएँ जो या तो गृहीत हैं, या विकसित हुए हैं। जातीय, भौगोलिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का भाषा से घनिष्ठ संबन्ध है। इसको ध्यान में रखकर किया गया यह अध्ययन इस दिशा में विनम्र प्रयास है।

**इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।**

**यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।<sup>1</sup>**

प्रत्येक समाज की अपनी भाषा होती है। भाषा समाज में पैदा होती है। समाज के मनुष्य का संबन्ध भाषा द्वारा ही संपन्न होता है। जो उसके व्यवहार, चिंतन एवं अनुभव को संयोजित एवं पुष्ट करती है। निश्चित सामाजिक संदर्भों में उचित भाषा-प्रयोग की क्षमता भी मनुष्य के संप्रेषण सामर्थ्य के केन्द्र में होती है। संप्रेषण व्यवस्था समाज सापेक्ष होती है।

संस्कृति के लिए समाज एक अनिवार्यता है, तो समाज के लिए भाषा भी एक अनिवार्यता है। क्योंकि भाषा ही विचार-विनिमय का साधन है। विचार-विनिमय के आधार पर ही समाज का निर्माण होता है। भाषा उतनी ही प्राचीन है, जितना मानव समाज। मानव-भाषा हमेशा परिवर्तित होती है। वर्तमान में प्रयुक्त होने पर भाषा भूत और भविष्य के विषय में काफी कुछ कहने में समर्थ होती है। अतीत से जहाँ उसका नाभि-नाल का संबन्ध होता है, वहीं भविष्य की अनन्त संभावनाएँ भी उसमें छिपी रहती हैं।<sup>2</sup> इस सन्दर्भ में भारतीय भाषाओं के साथ संस्कृत के अंतर्संबन्धों की खोज अत्यन्त दिलचस्प विषय रहेगा।

प्राचीन काल से ही एक ही देश में पनपने वाली भाषाएँ होने के कारण इन भाषाओं में अंतर्संबन्धों के कई तत्त्व परिलक्षित होते हैं। यह अंतर्संबन्ध कभी भाषाओं तथा साहित्यों की समानताओं में विद्यमान है तो कभी विषमताओं में। अतिप्राचीन काल से तीर्थ यात्रा, व्यापार, पर्यटन आदि के कारण बड़ी मात्रा में लोगों का आवागमन भारत में यत्र-तत्र सर्वत्र होता रहा। इस दौरान उनके मध्य परस्पर संप्रेषण के साथ-साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी संपन्न हुए। स्पष्ट है कि यत्किंचित मात्रा में ही सही, परन्तु प्राचीन समय से ही भारतीय भाषाओं में आपसी संबंध होता रहता था। भारतीय भाषाओं के साथ संस्कृत के अंतर्संबन्ध के सन्दर्भ में कुमाउनी और संस्कृत के अंतर्संबन्ध तथा प्रभाव की खोज ही यहाँ अभीष्ट है।<sup>3</sup> इस दृष्टि से कुमाउनी भाषा जहाँ संस्कृत के साथ अन्तर्गुम्फित है, वहीं अपने वर्तमान समाज एवं संस्कृति को भी समग्रता में समेटे हुए है।

यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाषाओं के बीच आनुवांषिक संबन्ध होते हैं। यदि वे एक दूसरे के निकट का संबन्ध रखती हैं तो यह कहा जा सकता है कि वे एक ही वंश-परम्परा का प्रतिनिधित्व करती हैं। तब हमारा कर्तव्य हो जाता है कि समानताओं और विषमताओं का अन्वेषण करें और उन तत्त्वों का पता लगाएँ जो या तो गृहीत हैं, या विकसित हुए हैं। जातीय, भौगोलिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का भाषा से घनिष्ठ संबन्ध है। इसको ध्यान में रखकर किया गया यह अध्ययन इस दिशा में विनम्र प्रयास है।<sup>4</sup>

कुमाउनी भाषा और संस्कृत के अंतर्संबन्धों को यदि हम देखें तो हमें अद्भुत समानताएँ दिखती हैं। जो नितान्त संयोग न होकर उन भाषाओं के सांस्कृतिक, सामाजिक

संबन्धों की द्योतक है। बाहरी विभिन्नता तथा आन्तरिक एकता को पुष्ट करती है। यह समानता ध्वनि, शब्द, वाक्य तथा लिपि सभी स्तर पर दिखाई देती है।<sup>15</sup> कुमाउनी में संस्कृत की प्रायः सभी स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ विद्यमान हैं। स्वरों में आ ई ए ऐ ओ दीर्घ स्वरों में आ ई ए ऐ ओ औ ह्रस्व रूप भी स्वतन्त्र स्वनिम के रूप में विद्यमान हैं। देवनागरी लिपि में ये ध्वनियाँ विद्यमान न होने के कारण कुमाउनी लिखने में प्रायः कठिनाई अनुभव की जाती रही है। अतः इन ह्रस्व स्वनिमों को देवनागरी में जोड़ लेने पर यह कठिनाई हल हो सकती है। वर्णमाला के इस वैज्ञानिक विश्लेषण का श्रेय डॉ. बी. डी. उप्रेती व डॉ. केशवदत्त रूवाली को जाता है, जिन्होंने सर्वप्रथम कुमाउनी वर्णमाला का लेखिमिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए इन ध्वनियों के लिए विशिष्ट ध्वनि चिह्न निर्धारित किए हैं। कुमाउनी भाषा की ध्वनियों का उच्चारण वैदिक उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित उच्चारण से मेल खाता है। कुमाउनी में संस्कृत प्लुत उच्चारण की ध्वनि भी मिलती है।<sup>16</sup> कुमाउनी की स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ इस प्रकार हैं।

स्वर— अ, आ, आ, इ, ई, ई, उ, ऊ, ए, ए, ऐ, ऐ, ओ, ओ, औ, औ = 16

अर्द्धस्वर — य, व

व्यंजन— क, ख, ग, घ, ङ

च, छ, ज, झ, ञ

ट, ठ, ड, ढ, ण, ङ, ढ

त, थ, द, ध, न

प, फ, ब, भ, म

य, र, ल, व, ल्ह, म्ह

ष, स, ह

= 34

स्वरों में 'ऋ' का उच्चारण 'रि' की भाँति होता है, किन्तु लेखन में लिखने की ही परंपरा है। संयुक्त स्वर नहीं है। व्यंजनों में 'ष' का उच्चारण नहीं मिलता, किन्तु तत्सम शब्दों के साथ 'ष' का उच्चारण प्रचलित है। 'ष' का उच्चारण 'ख' भी मिलता है। बोली, क्षेत्र, स्थान और जाति की दृष्टि से कुमाउनी में उच्चारणगत शब्दावली विषयक तथा ध्वनात्मक भेद मिलते हैं।<sup>17</sup> कुमाउनी में उच्चारण की दृष्टि से मुख्यतः दो तरह की प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। पहला, दीर्घ स्वरों का ह्रस्व उच्चारण और दूसरा, ह्रस्व स्वरों का ह्रस्वतर (अति ह्रस्व) उच्चारण। जिस प्रकार वैदिक संस्कृत स्वर प्रधान है तथा स्वरों के उदात्त, अनुदात्त उच्चारणों से अर्थभेद उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार कुमाउनी भाषा भी स्वर प्रधान है।<sup>18</sup> भाषाविदों की यह बात भी तर्कसंगत जान पड़ती है कि वैदिक एवं लौकिक संस्कृत की मूल ध्वनियों को जितना कुमाउनी ने सुरक्षित रखा, उतना अन्य किसी भारतीय आर्य भाषा ने नहीं। अनुनासिक 'ङ' एवं 'ञ' तक कुमाउनी में सुरक्षित हैं, जबकि अन्य भाषाओं में वे लुप्तप्राय हो गये हैं।<sup>19</sup>

**यथा—** कु० 'अङन्यार' 'मधुमक्खी' की जाति का बडा 'रंगीन बर' ऋग्वेद में 'आरंगर' है। इसी प्रकार कु० 'गाड़' छोटी नदी, शब्द वै० गाध तरणीय या छोटी है, जो 'गम्' जाना धातु से निष्पन्न है। 'गाड़' के कारण भूमि कटाव होते रहने से खड़्ड सा होता चला गया भू-भाग कु० में 'गधयर' कहलाता है इसका संबंध भी वै० 'गाध' से ही है। संस्कृत में गाध का अर्थ परिवर्तित होकर पार करने योग्य तरणीय या उथला हो गया। वै० चेतति कु० चितूण (महसूस होना), वै० मीङ् कु० मणि या मुणि (न्यून) आदि अनेक शब्द हैं, जो भारत की अन्य भारतीय आर्य भाषाओं में नहीं मिलते किन्तु कुमाउनी आदि मध्य पहाड़ी में प्रायः उसी रूप में सुरक्षित हैं, जिस रूप और अर्थ में वे ऋग्वेद आदि में व्यवहृत हुए हैं।<sup>10</sup>

कत्यूरी शासनकाल में राजभाषा संस्कृत थी। इसके विपरीत चन्द शासकों ने जनता से सीधे सम्पर्क स्थापित करने तथा लोकभावनाओं से जुड़ने के उद्देश्य से कुमाउनी को राजभाषा के रूप में अपनाया, तत्कालीन शिलालेख, ताम्रपत्र, सनद, अभिलेख आदि इसके प्रमाण हैं।<sup>11</sup> वस्तुतः प्राचीन आर्य-भाषा से पहाड़ का संबंधित होना कोई अस्वाभाविक और आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है। आज भी यहाँ की बोली में अनेक ऐसे शब्द उपलब्ध हैं जो वैदिक हैं। वास्तव में उत्तर की लौकिक भाषा संस्कृत के बहुत निकट थी। **यथा—** कु० आड सं०



(अंग), कणिक (कणिकः), कौल (कलिः)—झगड़ा, काल (कल्ल), काठ (काष्ठम्), काँठ (काठः)—चट्टान, काण (काणः)—एक आँख वाला, कापाड़ (कार्पाटः)—चीथड़ा, कुकुड़ (कुक्कुट)—मुर्गा, कुकुर (कुक्कुरः), कुचि (कुर्चिका)—चाबी, कुड़ (कुरः)—घर, कुश (कुषः), कुल (कुल्या)—नहर, कूण (कुण्)—कहना, कु (कूपः), कुच् (कूर्चः)—झाड़ू, छुर (क्षुर)—उस्तरा, खान् (खननम्)—खोदना, खल (खलः)—खलिहान, खुट (खुरः), गडू (गडु)—जलपात्र, गैर (गह्वर)—गहरा, गोठ (गोष्ठ)—गोशाला, गास (ग्रासः)—कौर, घड़ (घटः), घुघुत (घुः)—कबूतर जाति का एक पक्षी, जागर (जागरः)—जागरण, तिन (तेमः)—गीला, दयार (दारुकः)—देबदार, क्वेराल (कोविदवार)—कचनार, माष (माषः)—उड़द, षँष (शशकः)—खरगोष, मुष (मूषकः), भाण् (भाण्डकः)—बर्तन, शेमल (शाल्मलः)—सेमल का वृक्ष, सु (शुकः), तीस (तृषा)—प्यास, म्जण (मार्जन)—माँजना, लूण (लवण)—नमक आदि।<sup>12</sup> यही नहीं कुमाउनी में विभिन्न पर्वों, त्योहारों, मेलों, ऋतुओं, जात्राओं, व्रतों, सांस्कृतिक समारोहों आदि के नाम भी संस्कृत भाषा साहित्य से उद्भूत हुए हैं। कुमाउनी के मुक्तक गीतों में न्योली, जोड़, चांचरी, झोड़ा, छपेली अन्य स्फुट गीत एवं प्रबन्ध गीतों में जागर, घणेली, भड़ा, आंदू, रितुरेण आदि प्रायः संस्कृत के ही शब्द हैं।

**यथा—** “न्योली” न्योली की व्युत्पत्ति ‘नवल’ या ‘नवेली’ शब्द से मानी जाती है। “चाँचरी” चाँचरि, चाँचुरि, या चाँचुड़ी शब्द संस्कृत के ‘चर्चरी’ शब्द से विकसित है। जो चर्च से निष्पन्न है। वास्तव में ‘चर्चरी’ या ‘चाचर’ अत्यन्त प्रचीन काव्य रूप है। कालिदास के ‘विक्रमोर्वशीयम्’ और श्रीहर्ष के नाटकों में ‘चर्चरी’ का उल्लेख आता है।<sup>13</sup> “झोड़ा” ‘झवाड़ा’ या ‘झवाड़’, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे ‘झोड़ा’ को संस्कृत ‘झटति’ से संबन्धित मानते हैं। डॉ. केशवदत्त रुवाली ‘झोड़ा’ की व्युत्पत्ति संस्कृत अंदोल— प्रा० झुल्ल (झूलना) से मानते हैं।<sup>14</sup> “छपेली”— छपेली शब्द छप् संस्कृत ‘क्षप’ ‘क्षिप्र’ में कुमाउनी प्रत्यय ऐली छप्+ऐली के योग से जान पड़ता है।<sup>15</sup> “आंदू” ‘अष्टमी’ या ‘अदवाली’ शब्दों का मूल संस्कृत के अष्टम् तथा अष्टमी शब्द है। “जागर” शब्द संस्कृत का है जिसका शाब्दिक अर्थ है जागना या जगाना।<sup>16</sup> “घणेली” शब्द ‘घन’ ‘घण’ शब्द में कुमाउनी ऐली प्रत्यय लगकर बना है। ‘घन’ अनुरणन मूलक शब्द है। नाट्यशास्त्र में आचार्य भरतमुनि ने ‘काँस्यतालादिकमघनम्’ कहकर स्पष्ट किया है। घन में हन् हन्येते भाव विद्यमान है।<sup>17</sup> “भड़ा” शब्द संस्कृत के ‘भट’ शब्द से निष्पन्न है। ‘भड़’ में स्त्रीलिंग

आ प्रत्यय लगकर ‘भड़ा’ शब्द बनता है। जिसका शाब्दिक अर्थ वीर या योद्धा है। “रितुरेण” शब्द संस्कृत के ‘ऋतुरमण’ शब्द से बना है। चैत्र मास की संक्रान्ति से गाए जाने के कारण कहीं-कहीं इन्हें चैता या चैती भी कहा जाता है।<sup>18</sup>

ये समताएँ इनकी मौलिक भाषा के तत्त्व हैं जिनको इन सब ने अपनी-अपनी वर्तमान विकासावस्था तक पूर्णरूप से सुरक्षित रखा है। इनमें जो जो विषमताएँ हैं वे तत्त्व हैं जो इनके दीर्घकालीन पार्थक्य से अपने आप विकसित होकर नवीन धारावाही विकास का रूप लेने में समर्थ हुए हैं।<sup>19</sup> शिलालेखों, ताम्रपत्रों, और हस्तलिखित ग्रंथों में उपलब्ध सामग्री एवं भाषा के आधार पर कुमाउनी भाषा की विकास यात्रा को निम्न कालों में विभक्त किया जा सकता है।

- 1— आदिकाल सन् 1100 ई० से 1400 ई० तक।
- 2— पूर्वकाल सन् 1400 ई० से 1700 ई० तक।
- 3— उत्तर मध्यकाल सन् 1700 ई० से 1900 ई० तक।
- 4— आधुनिककाल सन् 1900 ई० से आज तक<sup>20</sup>

आदिकाल सन् (1100 से 1400 ई०) इस काल की कुमाउनी भाषा देवनागरी लिपि में शिलालेखों, सनदों और ताम्रपत्रों में उत्कीर्ण मिलती है, जो संस्कृत मिश्रित कुमाउनी है। जिसके कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं।

**यथा—** 1— साके 1027 सि महिंद्र भट माहेश्वरं स्थापितं।

2— श्री शाके 1266 मास भाद्रपद राजा त्रिलोकचंद्र रामचंद्र चंपाराज चिरजयतु पछमुल बलदेव चडमुह की मठराज दीनी।

3— ऊँ स्वस्ति।। श्री शाके 1311 समये च कार्तिक वदि चतुर्दस्यां तिथौ। गुरुवासरे। शिवरात्रौ, राजा श्री ग्यान चंद्रेण। गर्सू सर्माणे ब्राह्मणाय भूमि संकल्प दिन्हि न रा सं उं मां त्रुं भुंदाक मंद सहित के संकल्प दिन्हू।<sup>21</sup>

भाषा के इन नमूनों से ज्ञात होता है कि आदिकालीन कुमाउनी में संस्कृत ध्वनियाँ विकार सहित प्रयुक्त होने थीं। ष ध्वनि स् सं० शाके > कु० साके, सं० श्री > कु० सि तथा

शब्द मध्यग ए, इ, रूप में उच्चरित होने लगा था। संस्कृत यत् व तत् (सः) सर्वनाम ध्वनि विकार के साथ 'जो' व 'सो' रूप में प्रचलित हो गए थे। शब्द मध्यग व्यजनों के स्थान पर स्वर तथा उच्चारण में शब्दान्त में ह्रस्वत्व की प्रवृत्ति लक्षित होने लगी थी। 'ख्' के स्थान पर 'ष्' लिखा जाता था। इ द् तथा अनुनासिक ध्वनियों का प्रयोग लेखन के प्रचलन में नहीं था। इसी प्रकार पूर्वमध्यकाल (1400 से 1700 ई०) में विभिन्न स्थानों से अनेक जातियाँ संक्रमित होकर कुमाऊँ में आईं। इस जातीय संक्रमण का प्रभाव कुमाउनी भाषा पर भी पड़ा। किन्तु पूर्वमध्यकाल में भी कुमाउनी संस्कृत मिश्रित ही रही। वस्तुतः आदिकाल, पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल के प्रारम्भ की कुमाउनी 'अभिलेखीय कुमाउनी' रही है।<sup>22</sup> यद्यपि इस दौरान कुमाउनी स्पष्टतर रूप प्राप्त करती गयी। परिणामस्वरूप तद्भव शब्दों के प्रयोग का बाहुल्य बढ़ा। शब्दों में ध्वनि विकार की प्रवृत्ति भी बढ़ती गयी। उच्चारण में ह्रस्वत्व बढ़ा, किन्तु लेखन में कहीं-कहीं दीर्घीकरण की प्रवृत्ति बनी रही। अनुनासिक ध्वनियों का लेखन में अभाव बना रहा। णकार और नकार दोनों प्रयोग स्वीकार्य रहे। ख् ध्वनि के लिए अधिकतर 'ष्' का ही प्रयोग होता रहा। **यथा—** लिषितं, लेश। श् के लिए ष् (वैषाश)। स् के लिए श् (छत्तीशी, निकाशु) तथा 'स' के लिए 'श्' (सुदर्भदाश) ध्वनियों के प्रयोग होते रहने से उच्चारण विभिन्नता बनी रही। सर्वनाम रूपों का भी विकास हुआ। संस्कृत की विसर्ग ध्वनि (:) का उच्चारण ए हो गया।<sup>23</sup>

उत्तर मध्यकाल (1700 से 1900 ई.) अठारहवीं शताब्दी के तृतीय दशक तक कुमाउनी पत्र-व्यवहार व अभिलेखीय रूप में चलती रही। अब तक ज्ञात साहित्य के रूप में कुमाउनी पहली बार शाके 1650 सन् 1728 ई. में रामभद्र त्रिपाठी द्वारा 'चाणक्य नीति' के गद्यानुवाद के रूप में सामने आईं। इसमें 212 संस्कृत श्लोकों का कुमाउनी में अनुवाद किया गया, अनुवाद की भाषा संस्कृतनिष्ठ कुमाउनी है। कुमाउनी भाषा के विकास की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है।<sup>24</sup> इस दौरान कुमाउनी कवियों में ज्वालादत्त जोशी, बी. डी. उप्रेती आदि के द्वारा संस्कृत की कई रचनाओं का कुमाउनी अनुवाद कर उसके विकास क्रम को समृद्ध किया गया। जिसका उल्लेख डॉ. ग्रियर्सन ने अपनी "भाषा सर्वेक्षण" में किया था। उन्नीसवीं सदी में गुमानी पन्त

(1790-1850 ई.) ने कुमाउनी को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। गुमानी की कुमाउनी कविताओं में संस्कृत का मिश्रित रूप मिलता है।

**यथा—** दिन-दिन खजाना का भार बोकड़ा लै।  
शिव! शिव! चुलि में का बाल नै एक केका।।  
तदपि मुलुक तेरो छोड़ि ना कोई भाजा।  
इति वदति गुमानी धन्य गोरखाली राजा।।<sup>25</sup>

आधुनिक काल (सन् 1900 ई० से अब तक) में कुमाउनी का स्वरूप प्रचीनकाल की कुमाउनी से पर्याप्त भिन्न हो गया है। खड़ी बोली हिन्दी के प्रभाव से कई स्थानीय प्रयोग परंपरा से उठ गए हैं। अंग्रेजी शासनकाल में व्यापारियों, साधु-सन्तों, समाज सुधारकों तथा देशी-विदेशी, भाषा-भाषियों का यहाँ आवागमन जारी रहा, तदनुरूप उनकी भाषा-बोली का भी पहाड़ी भाषा पर प्रभाव पड़ता रहा।<sup>26</sup>

समग्रतः विचार करने पर ज्ञात होगा कि भाषा तथा साहित्य के विविध पहलुओं और स्तरों पर कुमाउनी और संस्कृत के अंतर्संबन्धों की कई कड़ियाँ विद्यमान हैं। यद्यपि संबन्ध-सूत्रों को खोजने के लिए केवल भाषा वैज्ञानिक आधार ही पर्याप्त नहीं हैं। क्योंकि किसी भी क्षेत्र की भाषा, संस्कृति, समाज तथा इतिहास का अध्ययन तब तक पूर्णतया संभव नहीं माना जाता, जब तक इनसे संबद्ध सामाग्री प्रामाणिक रूप से उपलब्ध न हो। भाषा का सीधा संबन्ध मनुष्य की परम्परा, समाज, संस्कृति एवं उसके अतीत से है। भाषा में अतीत वर्तमान और भविष्य एक साथ निहित होता है, क्योंकि अतीत की जो भाषा थी, वही अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक दबावों के कारण आज की भाषा बनी है, और भविष्य में भाषा का जो स्वरूप बनेगा, उसमें भी अधिकांश हिस्सा आज की भाषा का मौजूद रहेगा। अतः भाषा चाहे वर्तमान की हो अथवा भविष्य की उसकी जड़ें अतीत की परतों में ही निहित होती हैं। कई मानव शास्त्रीय तथा सामाजिक एवं भौगोलिक कारण होते हैं, जो भाषा के स्वरूप को प्रभावित एवं परिवर्तित करते रहते हैं। आज व्यापक रूप से यह समझा जाने लगा है कि अपनी सामाजिक तथा सांस्कृतिक जड़ों तक पहुँचने के लिए भाषा एक जरूरी साधन है। इसके लिए

आवश्यक है कि भाषाओं पर अन्वेषण कार्य निरन्तर चलता रहे, साथ ही संपूर्ण भाषागत सामग्री एवं भाषा के नमूनों को रिकार्डिंग एवं लेखन द्वारा संरक्षित किया जाए। इससे किसी क्षेत्र विशेष के भाषागत सूत्रों को सही रूप से पकड़ने एवं उनके अन्तर्संबन्धों पर अध्ययन करने में मदद मिल सकती है।<sup>27</sup>

निष्कर्षतः इस विषय-विवेचन का उद्देश्य केवल कुमाउनी और संस्कृत भाषा के अंतर्संबन्धों को प्रमाणित या व्याख्यायित करना मात्र नहीं है, वरन् सुधी विद्वज्जनों के सहयोग और सान्निध्य में इस विषय पर गंभीर चर्चा करना तथा संस्कृत व अन्य भारतीय भाषाओं के आपसी रिश्तों को और अधिक प्रगाढ़ तथा प्रबल बनाना है। क्योंकि भारत की एकता और अखंडता एक बड़ी सीमा तक संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के सुदृढ़ अंतर्संबन्धों पर निहित है। सूचना-प्रौद्यौगिकी के बहुआयामी विकास की इस नई सदी में विविध माध्यमों के सहयोग से इन अंतर्संबन्धों को और भी अधिक सुदृढ़ किया जा सकता है।<sup>28</sup> ये अंतर्संबन्ध भाषा और साहित्य को परस्पर जोड़ने के साथ-साथ भारतीय एकता एवं अखंडता को भी चिरस्थायी रखेंगे।

#### संदर्भ-सूची

- 1- दण्डी, काव्यादर्श- 1-4
- 2- प्रो० बिष्ट, शेर सिंह, कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2011 पृ०सं०- 22
- 3- भारतीय भाषाएं और हिन्दी : अंतर्संबन्धों की व्याख्या, नेहरू स्म. सं. एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली 2003, पृ०सं०- 76
- 4- डॉ. चातक, गोविन्द, मध्यपहाड़ी की भाषिक परंपरा और हिन्दी, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 आमुख
- 5- भारतीय भाषाएं और हिन्दी : अंतर्संबन्धों की व्याख्या, नेहरू स्म. सं. एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली 2003, पृ०सं०- 78

- 6- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोकगीतों में छंद योजना, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2012 पृ०सं०- 20
- 7- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोकगीतों में छंद योजना, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2012 पृ०सं०- 21
- 8- प्रो० बिष्ट, शेर सिंह, कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2011 पृ०सं०- 52
- 9- प्रो० बिष्ट, शेर सिंह, कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2011 पृ०सं०- 26
- 10- डॉ. रूवाली, केशवदत्त, कुमाउनी हिन्दी व्युत्पत्ति कोष, ग्रंथायन अलीगढ़ प्रकाशन, पृ०सं०-97-98
- 11- प्रो० बिष्ट, शेर सिंह, कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2011 पृ०सं०- 24
- 12- प्रो० बिष्ट, शेर सिंह, कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2011 पृ०सं०- 25
- 13- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो 1994 पृ०सं०- 35
- 14- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो 1994 -पृ०सं०- 41
- 15- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो 1994 -पृ०सं०- 45
- 16- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो 1994 -पृ०सं०- 62
- 17- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो 1994 -पृ०सं०- 64
- 18- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोक साहित्य एवं कुमाउनी साहित्य, प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो 1994 -पृ०सं०- 66-68
- 19- प्रो० बिष्ट, शेर सिंह, कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2011 -पृ०सं०- 26
- 20- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोकगीतों में छंद योजना, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2012 पृ०सं०- 24

- 21- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोकगीतों में छंद योजना, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2012  
पृ०सं०- 24
- 22- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोकगीतों में छंद योजना, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2012  
-पृ०सं०- 26
- 23- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोकगीतों में छंद योजना, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2012  
-पृ०सं०-26-27
- 24- प्रो० पोखरिया, देव सिंह, कुमाउनी लोकगीतों में छंद योजना, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी(नैनीताल) 2012  
पृ०सं०-36-37
- 25- डॉ. रूवाली, केशवदत्त, कुमाउनी हिन्दी व्युत्पत्ति कोष, ग्रंथायन अलीगढ़ प्रकाशन, पृ०सं०- 63
- 26- डॉ. जोशी, महेश्वर प्रसाद, कुमारी ललित जोशी आदि, उत्तरांचल हिमालय, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा  
1994 -पृ०सं०- 168
- 27- प्रो० बिष्ट, शेर सिंह, कुमाउनी भाषा और साहित्य का उद्भव एवं विकास, अंकित प्रकाशन,  
हलद्वानी(नैनीताल) 2011 पृ०सं०- 42
- 28- भारतीय भाषाएं और हिन्दी : अंतर्संबन्धों की व्याख्या, नेहरू स्म. सं. एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली 2003,  
पृ०सं०- 97
- 29- ऋग्वेदसंहिता- 10, 191, 2, 4

#### पत्रिकाएँ-

- 1- दुद्बोली - चतुर्थ अंक - सम्पादक : मठपाल, मथुरादत्त, पम्पापुर रामनगर, नैनीताल (उत्तराखण्ड)
- 2- पहरु (कुमाउनी मासिक) जनवरी 2015 : तृतीय अंक - सम्पादक : डॉ० रावत, हयात, अल्मोड़ा,  
(उत्तराखण्ड)
- 3- गुरुकुल पत्रिका जुलाई-सितम्बर 2013: 3-4 अंक, संपादक: डॉ० शतांशु, सोमदेव, गुरुकुल कांगड़ी  
वि०वि, हरिद्वार, (उत्तराखण्ड)

## उपनिषद्दर्शनान्तर्निहितानि शैक्षिकतत्त्वानि

सुशान्तहोता

भारतीयशिक्षायाः प्रारम्भ इत्युक्ते विश्वशिक्षायाः प्रारम्भ इति नातिशयोक्तिः। वैदिककाले एव अस्या भारतीयशिक्षायाः उद्गमः जातः। एवमेव विविधेषु कालेषु विविधशिक्षादर्शनानुगुणं शिक्षायाः सम्प्रत्ययाः भिन्नाः भिन्नाः अवलोकिताः। एतेषु दर्शनेषु उपनिषद्दर्शनम् अत्यन्तं महत्त्वपूर्णं भवति। आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो वा<sup>१</sup> इति आत्मज्ञानप्राप्तिः, विद्ययाऽमृतमश्नुते<sup>२</sup> इति अमृतत्वप्राप्तिरेव अस्य शिक्षादर्शनस्य सारभूतं तत्त्वमिति बहुधा वर्णितमस्ति। अस्य दर्शनस्य पाठ्यक्रमः न केवलं सैद्धान्तिकः अपितु व्यावहारिकः, आत्मानुभूत्याधारितः अत्यन्तं सुविस्तृतश्च वर्तते। उपनिषद्दर्शनान्तर्गतानां विविधानां शैक्षिकतत्त्वानाम् अध्ययनेन शिक्षाक्षेत्रे अस्य विस्तृतिर्जायते। अस्य दर्शनस्य नैकानि शैक्षिकवैशिष्ट्यानि विद्यन्ते। यतोहि विषयोऽयम् अत्यन्तं सुविस्तृतः वर्तते तथापि आधुनिकशिक्षाव्यवस्थायाम् अस्य दर्शनस्य शैक्षिकतत्त्वानां योगदानमस्तीति विचिन्त्य मया उपनिषद्दर्शनस्य शैक्षिकपक्षमाश्रित्य अत्र उपनिषद्दर्शनान्तर्निहितानि शैक्षिकतत्त्वानि इति शीर्षकमवलम्ब्य लघुशोधप्रपत्रेऽस्मिन् संक्षिप्तरूपेण कानिचन तथ्यानि उपस्थाप्यन्ते।

भारतीयदर्शनेषु उपनिषद्दर्शनस्य स्थानम् अत्यन्तं महत्त्वपूर्णं भवति। वैदिकसाहित्यस्य अन्तिमभागः उपनिषद्भागः इत्यभिधीयते। ‘उप’, ‘नि’ इत्युपसर्गपूर्वकं ‘षदलृ’ इत्यस्मात् धातोः उपनिषद् इति शब्दोऽयं निष्पद्यते यस्यार्थः भवति व्यवधानरहितसम्पूर्णं ज्ञानम् अर्थात् व्यवधानेन विना गुरोः समक्षम् उपविश्य ज्ञानार्जनम् इति। एवमत्र शिष्यः गुरोः सान्निध्यं लब्ध्वा सर्वविधज्ञानम् अवाप्नोति। उपनिषद्दर्शनमिदम् अध्यात्मवादीदर्शनं वर्तते यत् शिष्यं सर्वोत्कृष्टं दिशं प्रति प्रेरयति। दर्शनस्यास्य एतादृशं वैशिष्ट्यं वर्तते यत् एतद् आदर्शवादीजीवनदर्शनम् उपस्थापयति, परमज्ञानस्य महिमानं प्रकटयति, परमतत्त्वस्यान्वेषणार्थं प्रचोदयति, प्रकृतेः मायायाश्च स्वरूपं स्पष्टीकरोति, जननमरणयोः विस्तृतं विवरणं प्रस्तौति, भारतीयदर्शनानां मूलतत्त्वम् अभिव्यनक्ति, जीवनस्य वास्तविकीं स्थितिं प्रतिपादयति, विविधशिक्षणप्रणालीनां वैशिष्ट्यं परिस्फुटयति, सत्यान्वेषणाय औत्सुक्यं जनयति, विश्वब्रह्माण्डस्य ज्ञानाय अवसरं परिकल्पयति, भारतीयधर्मसंस्कृतिपरम्परादीनां ज्ञानञ्च कारयति।

उपनिषद्दर्शनस्य नैकानि शैक्षिकवैशिष्ट्यानि विद्यन्ते येषामाश्रयेण आधुनिकशिक्षाव्यवस्थायां गुणवत्ता उत्पादयितुं शक्यते। उपनिषद्दर्शनस्य शैक्षिकपक्षमाश्रित्य अत्र मया उपनिषद्दर्शनान्तर्निहितानि शैक्षिकतत्त्वानि इति विषयमवलम्ब्य लघुशोधप्रपत्रेऽस्मिन् उपनिषद्दर्शनानुसारं शिक्षा, शिक्षायाः उद्देश्यानि, पाठ्यचर्या, ज्ञानार्जनविधयः, शिक्षासंस्था, अनुशासनं, शिक्षकशिक्षार्थिनो सम्बन्धः, आधुनिकशिक्षायां योगदानम् इत्येते विषयाः उपस्थाप्यन्ते।

#### उपनिषद्दर्शनानुसारं शिक्षा-

उपनिषद् ज्ञानप्राप्तेः साधनं भवति। उपनिषदामनुसारं यया प्रक्रियया आन्तरिकजिज्ञासा तीव्रा, परिमर्जिता, शान्ता, सुसंस्कृता च भवति सा शिक्षा इत्यभिधीयते। शिक्षा नाम निःश्रेयसोऽधिगमः इति अत्र कथ्यते। एवमेव चिन्तन-मनन-निदिध्यासन-विश्लेषणादिभिः ब्रह्मणः स्वरूपोपस्थापनमेव शिक्षा। ईशावास्योपनिषदि कथ्यते- विद्ययाऽमृतमश्नुते इति। किञ्चात्र आत्मानुभवेन आत्मानुभूत्या च मनुष्याणाम् आध्यात्मिकरणप्रक्रिया एव शिक्षा इति अत्र बहुधा प्रतिपादितं विद्यते।

#### शिक्षायाः उद्देश्यानि-

मूर्त्त-अमूर्त्त-समस्तजगत्-जैव-अजैवादीनां वस्तूनां विवेचनमेव उपनिषद्दर्शनस्य उद्देश्यानि भवन्ति। एवं प्रकारेण अस्य दर्शनस्य उद्देश्यानि अधोनिर्दिष्टानि वर्तन्ते। तानि यथा-

१. आत्मज्ञानप्राप्तिः- विद्ययाऽमृतमश्नुते इत्यादिमन्त्रेण ज्ञायते यत् आत्मज्ञानस्य, आत्मानुभूतये, मोक्षस्य अमृतत्वस्य च प्राप्तिः शिक्षायाः परममुद्देश्यं भवति।
२. भौतिकज्ञानप्राप्तिः- अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमयादीनां कोषाणां विवेचनम् उपनिषत्सु उपलभ्यते। अत्र नैकेषां भौतिकतत्त्वानां संरचनावादसिद्धान्तानाञ्च ज्ञानं सम्पादयति दर्शनमेतद्।
३. शारीरिकविकाससम्पादनम्- उपनिषत्सु शारीरिकविकासस्य नैके नियमाः, योगक्रियाः प्रभृतयः प्रतिपादिताः सन्ति।
४. मानसिकविकासः- यम-नियम-आसन-प्राणायामेत्यादिभिः मानसिकविकासस्य प्रक्रियाम् एतद् दर्शनं प्रतिपादयति।
५. व्यक्तित्वस्य पूर्णविकासः- सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।<sup>३</sup> इत्यादिभिः मन्त्रैः अत्र व्यक्तित्वस्य पूर्णविकासाय नैके निर्देशाः प्रदत्ताः सन्ति।
६. आध्यात्मिकविकासः- आदर्शवादसिद्धान्तम् आध्यात्मिकताञ्च सम्पादयति एतद्दर्शनम्।

इत्यादीनि नैकानि शैक्षिकोद्देश्यानि उपनिषद्दर्शनस्य परिकल्पितानि वर्तन्ते।

#### पाठ्यचर्या-

उपनिषदीयशिक्षादर्शने पाठ्यचर्या न केवलं सैद्धान्तिकी अपितु व्यावहारिकी, प्रायोगिकी, आत्मानुभूत्याधारिता च भवति। अत्रत्या पाठ्यचर्या सक्रिया चिन्तन-मनन-निदिध्यासनयुक्तिसमन्विता च भवति। अत्र ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-सन्न्यासादीनां चतुर्णाम् आश्रमाणाम् अनुसारं पाठ्यचर्यायाः व्यवस्था वर्तते। किञ्चैषा सामाजिकी, मानवजीवनोपयोगिनी, व्यक्तिनिष्ठा च वर्तते। तत्र ब्रह्मचर्याश्रमे वैदिककालमिव गुरुगृहे उषित्वा शिष्याः जीवनयापनं कुर्वन्ति। सर्वाऽपि अध्ययनप्रक्रिया तत्रैव सम्पाद्यते। अध्ययनस्य समनन्तरं दीक्षान्तसमारोहे गुरुभिः उपदेशाः प्रदीयन्ते। तत्पश्चात् ते गृहस्थाश्रमे प्रविशन्ति। गृहस्थाश्रमे के के विषयाः अध्येतव्याः इत्यस्मिन् सन्दर्भे तैत्तिरीयोपनिषदि उल्लिखितमस्ति यत्- शमः च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च।<sup>४</sup> एतादृशाः विषयाः निर्दिष्टाः वर्तन्ते। एवमेव गृहस्थाश्रमस्य कार्यं सम्पाद्य वानप्रस्थाश्रमे तदनु सन्न्यासाश्रमे प्रविश्य विविधान् विषयान् शिक्षयन्ते।

अत्र पुनः परापाठ्यचर्या अपरापाठ्यचर्यात्वेन पाठ्यचर्या द्विधा वर्तते उपनिषदामनुसारम्। मुण्डकोपनिषदि प्रथममुण्डके प्रथमखण्डे चतुर्थमन्त्रे कथ्यते यत्-

तस्मै स होवाच द्वे विधे वेदितव्ये इति ह स्म। यद् ब्रह्मविदो वदन्ति, परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदोऽथर्ववेदः, शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो ज्योतिषमिति। तत्र परा यया तदक्षरमधिगम्यते।<sup>५</sup> इति।

पुनश्च छान्दोग्योपनिषदि सप्तमप्रपाठके, प्रथमखण्डे द्वितीयमन्त्रे कथ्यते-

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां, ब्रह्मविद्यां, भूतविद्यां, क्षत्रविद्यां, नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद् भगवोऽध्येमि।<sup>६</sup> इति।

एवं क्रमेण उपर्युक्तकथनानुसारं भौतिकवस्तूनाम् अध्ययनम्, प्रकृतिविज्ञानं, जीवविज्ञानं, समाजविज्ञानं, नागरिकशास्त्रम्, इतिहासः, भौतिकोत्पादनम्, उद्योगः, कलाकौशलं, यन्त्रविद्या, नक्षत्रविद्या, भाषासाहित्यं, व्यायामः, ब्रह्मविद्या, तर्कविज्ञानं, मनोविज्ञानं, धर्मशास्त्रं, योगविज्ञानं, नैतिकशास्त्रम् इत्यादयः दैनन्दिनजीवनसम्बद्धाः नैके विषयाः अत्र पाठ्यचर्यायाम् अन्तर्भवन्ति।

#### ज्ञानार्जनविधयः-

अत्र उपनिषदीयशिक्षादर्शने ज्ञानार्जनस्य नैके विधयः अधोलिखिताः वर्तन्ते। तद्यथा-

१. उपदेशात्मकविधिः- उपदेशप्रदानपूर्वकं शिक्षाप्रक्रियायाः सञ्चालनाय अत्र अनेकानि उदाहरणानि लभ्यन्ते। तपः-सत्य-शान्ति-ब्रह्मचर्य-अग्निहोत्रादीनां कृते उपदेशः प्रदत्तः विद्यते।

२. स्वाध्यायप्रवचनविधि:- स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। शमः च स्वाध्यायप्रवचने च।<sup>०</sup> इत्यादिभिः मन्त्रैः स्वाध्यायविधेः प्रवचनविधेश्च महत्त्वम् उपनिषद् शिक्षादर्शने प्रतिपाद्यते।
३. आत्मोक्तिविधि:- जिज्ञासाशान्तये अत्र छात्राणाम् अध्यापकानां च कृते अवसरः परिकल्प्यते।
४. सूत्रविधि:- विविधानां सूत्राणाम् उपस्थापनपुरस्सरं शिक्षणमनेन विधिना प्रचलति।
५. व्युत्पत्तिविधि:- अथ खलु यः उद्गीथः, स प्रणवो यः प्रणवः<sup>६</sup> इत्यादिषु स्थलेषु व्युत्पत्तेः प्रयोगत्वात् व्युत्पत्तिविधिरपि अत्र स्वीक्रियते।
६. संवादविधि:- उपनिषत्सु नैकेषां संवादानां प्रचाल्यमानत्वात् संवादविधिना अपि शिक्षणं सम्पाद्यते।
७. व्याख्याविधि:- अथ शिक्षां व्याख्यास्यामः<sup>९</sup> इत्यादिषु स्थलेषु व्याख्याविधेः प्रयुज्यमानत्वात् शिक्षणे व्याख्यानविधिरपि उपयुज्यते।
- एवमेव कथाविधिः, विचारविमर्शविधिः, संश्लेषणविश्लेषणविधिश्चेत्यादीनां विधीनां प्रयोगः उपनिषदीयशिक्षादर्शने प्राप्यते। परन्तु सर्वाऽपि शिक्षणप्रक्रिया श्रवणमनननिदिध्यासनैः प्रचलति।

#### शिक्षासंस्था:-

ऋषि-मुनि-तपस्वी-गुरुणां निवासस्थलान्येव शिक्षासंस्थाः वर्तन्ते। छात्राः गुरुगृहे प्राकृतिकवातावरणे उषित्वा शिक्षन्ते।

#### अनुशासनम्-

उपनिषद्दर्शनानुसारम् अनुशासनस्य तात्पर्यं भवति व्यवस्थायाः नियन्त्रणम्। परंब्रह्मणा अस्याः सृष्टेः उत्पादनमपि एकम् अनुशासनं भवति। अत्र आत्मसर्वस्वमेव अनुशासनम्। निर्वाणमनुशासनम्। वेदानुशासनम्। सोऽयमात्मसर्वस्वमेव अनुशासनम्। किञ्च अत्र आन्तरिकं बाह्यञ्च अनुशासनं स्वीकृतं वर्तते। अनुशासनस्य त्रीणि तत्त्वानि अत्र प्रतिपादितानि सन्ति। तानि यथा-

1. ज्ञानप्राप्त्यर्थं शिष्यस्य तीव्रा जिज्ञासा।
2. आत्मप्रत्ययस्य विकासः।
3. आत्मसंयमश्च इति।

#### शिक्षकशिक्षार्थिनो सम्बन्धः:-

उपनिषद्दर्शनानुसारं शिक्षकशिक्षार्थिनो सम्बन्धः वैदिककालसदृशः वर्तते। शिक्षार्थिनः गृहेषु, आश्रमेषु, तपोवनेषु च उषित्वा कालं यापयन्तः शिक्षन्ते। अत्र शिक्षकः ब्रह्मनिष्ठः, आचार्यः, वेदानां ज्ञाता,

सत्यप्रतिपादनतत्परः, ब्रह्मनिष्ठः श्रोत्रियश्च भवति। शिक्षार्थी बाह्यज्ञानात् असन्तुष्टः, जिज्ञासुः, अमृततत्त्वानुभवी, अनन्ततत्त्वसाक्षात्कारः, आध्यात्मिकलोलुपयुक्तः, आत्मसाक्षात्कारतत्परश्च भवति।

उभयोरपि समानं महत्त्वं भवति। कठोपनिषदि शान्तिमन्त्रे सह नावतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै,<sup>१०</sup> तथा च तैत्तिरीयोपनिषदः शिक्षाध्याये तृतीयानुवाके सह नौ यशः सह नौ ब्रह्मवर्चसम्<sup>११</sup> इत्युक्त्वा उभौ उभयोः कल्याणं प्रार्थयतः।

#### आधुनिकशिक्षायां योगदानम्-

अत्र उपनिषत्सु प्रतिपादितानां शैक्षिकवैशिष्ट्यानाम् आधुनिकशिक्षायां किं योगदानं वर्तते इत्यस्मिन् सन्दर्भे कथयितुं शक्नुमः यत्-

- बालकानाम् आन्तरिकजिज्ञासा तीव्रा, परिमर्जिता, सुसंस्कृता, शान्ता च भवति।
- चिन्तन-मनन-विश्लेषणशक्तीनां विकासः भवति।
- आत्मानुभवेन आत्मानुभूत्या च छात्राः शिक्षन्ते।
- बालकानां भौतिकज्ञानं सम्भवति।
- बालकानां मानसिकं तथा शारीरिकविकासं सम्पादयति।
- बालकानां व्यक्तित्वस्य पूर्णः विकासः भवति।
- आदर्शवादी तथा अध्यात्मवादसिद्धान्तान् उपस्थापयति।
- पाठ्यचर्या सैद्धान्तिकी, प्रायोगिकी, व्यावहारिकी आत्मानुभूत्याधारिता च भवति।
- ज्ञानार्जनस्य नैके सरलाः विधयः प्रतिपाद्यन्ते।
- अनुशासनस्य उत्तमतत्त्वानां ज्ञानं कारयति।
- शिक्षकशिक्षार्थिनो समानं महत्त्वं विवृणोति।

#### निष्कर्षः:-

उपर्युक्तानाम् एतेषां समेषां दर्शनशास्त्रान्तिर्निहितानां शैक्षिकतत्त्वानां समीक्षणपुरस्सरं केचन प्रस्तावाः मया अत्र उपस्थाप्यन्ते आधुनिकशिक्षायाम् गुणवत्तामुत्पादनाय। अत्र प्रतिपादिताः सिद्धान्ताः इदानीमपि अस्माभिः अनुसरणीयाः। अत्र केचन प्रस्तावाः अधोलिखिताः वर्तन्ते। यथा-

- पाठ्यविषयं प्रति छात्रेषु जिज्ञासा उत्पादनीया।
- चिन्तन-मनन-विश्लेषणादीनां शक्तीनां विकासः करणीयः।
- आत्माभिव्यक्तये छात्राः प्रोत्साहनीयाः।
- अध्यापकैः छात्राणां जिज्ञासा शामयितव्या।
- छात्राणां मानसिकं तथा शारीरिकविकासाय विविधाः पाठ्येतरक्रियाः सम्पादनीयाः।

- वैज्ञानिकप्रगत्या सह छात्रेषु आदर्शवादीविचारधारायाः कृते अपि महत्त्वं प्रदेयम्।
- सैद्धान्तिकविषयाणां प्रायोगिकं तथा व्यावहारिकपक्षस्योपरि बलं प्रदातव्यम्।
- शिक्षासंस्थासु अनुशासनसम्पादनाय अत्र निर्दिष्टानि तत्त्वानि अनुसरणीयानि।

#### सन्दर्भः

१. बृहदारण्यकोपनिषद्- २.४.५
२. ईशावास्योपनिषद्-११
३. तैत्तिरीयोपनिषद्- १.११.१
४. तैत्तिरीयोपनिषद्- १.९.१
५. मुण्डकोपनिषद्- १.१.४
६. छान्दोग्योपनिषद्- ७.१.२
७. तैत्तिरीयोपनिषद्- १.९.१
८. छान्दोग्योपनिषद्- १.५.१
९. तैत्तिरीयोपनिषद्- १.२.१
१०. कठोपनिषद्- शान्तिमन्त्रः
११. तैत्तिरीयोपनिषद्- १.३

#### सन्दर्भग्रन्थसूची -

१. आचार्य सत्यप्रिय, एकादशोपनिषद्, संस्कार प्रकाशन, दिल्ली-६, १९९७
२. भारतीय डॉ. भवानीलाल, उपनिषदों की कथाएँ, सुकीर्ति पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २००४
३. द्विवेदी डॉ. सच्चिदानन्द, ईशादिपञ्चोपनिषदः, श्री शारदापीठप्रकाशनम्, गुजरात, २००७
४. ओड् के. डॉ. लक्ष्मीलाल, शिक्षा का दार्शनिक पृष्ठभूमि, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, २००८
५. शर्मा प्रो. रजनी, पाण्डेय डॉ. सत्यप्रकाश, शिक्षा एवं भारतीय समाज, शिक्षा प्रकाशन, जयपुर, २००६
६. पारीक प्रो. मधुरेश्वर, शर्मा प्रो. (श्रीमती) रजनी, उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा, शिक्षा प्रकाशन, जयपुर, २००६
७. यादव डॉ. प्रतिभा, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, साहित्य प्रकाशन, आगरा, २००५

## अथर्ववेदीय सप्तर्षिपदगत अनेकार्थः - विशद विश्लेषण

गीता शुक्ला

वेद सम्पूर्ण विश्व के प्राणभूत तत्त्व है। वेद के बिना सृष्टि की सङ्कल्पना अधूरी है। अथर्ववेद में सप्तर्षि पद को आधार मानकर अत्यन्त गहन चिन्तन मनन किया गया है। प्रस्तुत शोध निबन्ध का प्रयोजन अथर्ववेद में वर्णित सप्तर्षि पद का विश्लेषण है।

विद्यते ज्ञायते लभ्यते वैभिर्धमादिपुरुषार्थ इति वेदः। 'वेद' शब्द की व्युत्पत्ति महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ज्ञान, सत्ता, लाभ तथा विचार इन चारों अर्थों को बतलाने वाली 'विद्' धातु से स्वीकार की है। इष्टप्राप्त्यनिष्ठपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।<sup>1</sup>

आचार्य मनु ने वेदों की महत्ता का स्पष्ट उद्घोष करते हुए कहा कि—  
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।  
धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।<sup>2</sup>  
पितृदेव मनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।  
अशक्यं वा प्रमेयं च वेदशास्त्रमितिस्थितिः।<sup>3</sup>

वेदार्थ-ज्ञान का महत्त्व स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि—  
स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद्  
अधीत्य वेदं न विज्ञानाति योऽर्थम्।  
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते  
नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।<sup>4</sup>

अर्थात् जो व्यक्ति वेद का अध्ययन तो करता है पर उसके अर्थ को नहीं जानता है वह ढूँढ वृक्ष की तरह केवल भार ढोने वाला ही होता है। जो अर्थ को जानता है वही सम्पूर्ण कल्याण को भोगता है और ज्ञान के द्वारा पापों को दूर कर स्वर्ग की प्राप्ति करता है।<sup>5</sup>

कुछ विद्वान वेद के मुख पाठ (5) पर ऐसे मुग्ध हो गए कि शब्द की महिमा को ही भूल गए और ऐसा मानने लगे कि वेद-मन्त्र अर्थबोध के लिए नहीं हैं, यज्ञ में यथाविधि उच्चारण करने के लिए हैं। यास्काचार्य के अनुसार—

कौत्स कहते हैं अनर्थका हि मन्त्राः । इसके उत्तर स्वरूप यास्क कहते हैं कि— अर्थवन्तः शब्दसामान्यात् । अर्थात् वेद में भी वे ही शब्द हैं जिनका प्रयोग प्रायः लौकिक संस्कृत में होता है अतः वेदार्थ समझने के लिए हमें प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

वैदिक विद्वानों की परम्परा में महर्षि यास्क का नाम अत्यन्त सम्मानपूर्वक लिया जाता है क्योंकि उन्होंने वेद-मन्त्रों के भिन्न-2 प्रसंग में भिन्न-2 अर्थ करके समाज का जो उपकार किया है वह अविस्मरणीय है। यह सर्वविदित है कि वैदिक शब्द 'योगिक' होते हैं अतः कोई भी विद्वान् आवश्यकतानुसार उत्तमोत्तम अर्थ निकाल लेता है यही वेदों की महत्ता का जीवन्त प्रमाण है। कुछ उदाहरणों से इसे स्पष्ट किया जा रहा है।

ऋग्वेद में एक मन्त्र है—

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत्त सन्दूक् ।  
तेषामिष्टानि स मिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ।<sup>9</sup>

निरुक्तकार महर्षि यास्क इस मन्त्र के आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दो प्रकार के अर्थ करते हैं। 'सप्तऋषीन्' का आधिदैविक अर्थ 'सप्तऋषीणानि ज्योतीषि' सात रंग की रश्मियाँ किया है तथा आध्यात्मिक अर्थ इन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) ग्रहण किया है। ऋष्यन्ति गच्छन्तीति ऋषयः' अर्थात् रश्मियों को ऋषि इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे अपने स्रोत से निकलकर दूसरे स्थानों पर गमन करती हैं और सात प्रकार की होती हैं।<sup>9</sup>

ऋष्यन्ति गच्छन्तीति ऋषयः अर्थात् जो गमन करते हैं अथवा किसी पदार्थ की प्राप्ति का बोध कराते हैं वे ऋषि कहलाते हैं इस प्रकार इन्द्रियाँ सप्त ऋषियों का वाचक हे क्योंकि इनसे हमें विषयों अथवा पदार्थों का बोध होता है।

यजुर्वेद का भी एक मन्त्र द्रष्टव्य है—

सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।  
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जाग्रतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ।<sup>10</sup>

इस मन्त्र में शरीर में ऋषियों का निवास बतलाया गया है अतः यदि यहाँ ऋषि शब्द का लोक-प्रसिद्ध अर्थ ग्रहण किया जाय तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। वेदों में प्रायः यौगिक शब्द भरे पड़े हैं एक जगह एक शब्द का अर्थ कुछ और तो अन्यत्र कुछ और होता है। जैसे 'इन्द्र' शब्द का अर्थ कहीं सूर्य, कहीं वायु तो कहीं आत्मा आदि किया गया है। सर्वसाधारण किन्तु अत्यन्त प्रसिद्ध 'ऋषि' शब्द का प्रयोग वेद में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त है। कोश में ऋषि शब्द की व्युत्पत्ति है ऋष्+इन्+कित् और अर्थ हैं—<sup>11</sup>

1. एक अन्तःस्फूर्त कवि या मुनि, मंत्र द्रष्टा
2. पुण्यात्मा मुनि या संन्यासी, विरक्त-योगी
3. प्रकाश की किरण

इसी प्रकार सप्त ऋषि—

1. सात ऋषि (मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुंलस्त्य, पुलह, क्तु और वशिष्ठ हैं)

2. सप्तर्षि नामक नक्षत्र पुंज सात तारों का समूह जो उपर्युक्त सात ऋषि कहे जाते हैं। (संस्कृत हिन्दी कोश-वामन शिवराम आष्टे  
जबकि श्रौतसूत्र के अनुसार—  
परमात्मा की सृष्टि और उसकी वेदविद्या के सूक्ष्म द्रष्टा ही सप्तऋषि हैं और वे इस प्रकार हैं—

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः ।  
अत्रिर्वसिष्ठ कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः ।<sup>12</sup>

उक्त सात ऋषि वेदार्थ-द्रष्टा के नाम से विख्यात हैं। अथर्ववेद में सप्तऋषि पद<sup>13</sup> पृथक्-पृथक् अर्थ में प्रयुक्त है। न केवल अथर्ववेद प्रत्युत् ऋग्वेद व यजुर्वेद में भी सप्त ऋषयः पद उपलब्ध है जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इतना ही नहीं 'वेद' संज्ञक आर्ष पद भी छूटा है उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं।  
ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः (यास्क) ऋषि दर्शनात् मन्त्रान् ददर्श (निरुक्त) स्तोमं जनयामि नव्यम् अर्थात् मैं एक नए स्तोत्र को जन्म देता हूँ।

तदुक्तम् ऋषिणा, अपि हि न ऋषिवचः श्रुतम् (?)<sup>15</sup>

महाभारत के अनुसार 'वेद' ऊर्ध्वरेता ऋषियों का शब्द है।

मध्वाचार्य के अनुसार— अग्नि, वायु और सूर्य ये तीन ऋषि वेद निर्माता थे।

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार— चारों वेद परमेश्वर ने ब्रह्मा को तथा ब्रह्मा ने एक-एक क्रमशः अग्नि, वायु, सूर्य तथा अथर्वा को सिखाया

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः अथर्वागिरसः ।<sup>16</sup>

जो भी हो निष्कर्ष यही प्राप्त होता है कि वेद ऋषिकृत हैं अतः आर्ष हैं और ऋषियों ने वेद को समझकर बखाना है, बनाया नहीं है।

अथर्ववेद में कहा गया है कि इस भूमि पर सप्तर्षियों ने यज्ञ, सत्र और तप के सहित वेद वाणियों का स्तवन किया। अतः मनुष्य विद्याध्ययन व उसका प्रचार-प्रसार करके ऋषि-ऋण से उर्द्ध्व होता है। एक लेखक के विचार से ऋषि शब्द का अर्थ 'वैज्ञानिक ही है'। वैदिक काल में वैज्ञानिक तत्व का अविष्कार करने वालों का ऋषि कहा जाता था। वर्तमान समय में तो वेदों की वैज्ञानिकता सिद्ध हो चुकी है। इस प्रकार अगाध ज्ञान के भण्डार वेद इस भूमण्डल पर सबसे प्रचीन ग्रन्थ है परन्तु विडम्बना यह है कि ऐसे अलौकिक विज्ञान-मय वेद के रहते हुए हम उतना लाभ नहीं उठा पा रहे हैं जितना पहले हमारे पूर्वजों ने उठाया था और आज विदेशी उठा रहे हैं।

सप्तऋषि शब्द अथर्ववेद में लगभग 25 मन्त्रों में प्रयुक्त हुआ है तथा प्रत्येक पद मुख्यतः दो अर्थों में प्रयुक्त है।

शब्दार्थ और भावार्थ

शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से सप्तऋषि पद के दो अर्थ निम्नलिखित हैं—

1. व्यापनशील व दर्शनशील (कान, आँख, नाक, जिह्वा तथा त्वचा (पोंच ज्ञानेन्द्रियों) मन, बुद्धि)
2. दो कान, दो नथुने, दो आँखें, एक मुख ये सात गोलक वा सात छिद्र सात व्यापनशील



कहीं-कहीं पर ज्ञानकारक या मार्गदर्शक इन्द्रियाँ शब्दार्थ भी मिलता है।<sup>17</sup>  
उल्लेखनीय है कि 'ऋषयः' षट् में छः ज्ञानेन्द्रियाँ (त्वचा, आँख, नाक, कान, जिह्वा, मन)<sup>18</sup>  
तथा कहीं-कहीं छः इन्द्रियाँ बुद्धि सहित शब्दार्थ भी प्राप्त होता है।<sup>19</sup>  
अथर्ववेद में ऋषीणां का शब्दार्थ है इन्द्रियों का।  
मेरे विचार से इन्द्रियाँ अर्थ उपयुक्त हैं क्योंकि दर्शन में भी इन्द्रियों को प्रकाशक कहा गया है।<sup>20</sup>

सूक्ष्म विषयों का ग्रहण ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही सम्भव होता है<sup>21</sup> अतः सप्त ऋषि का उक्त अर्थ उचित है। ऋषि भी सूक्ष्म ज्ञान के द्रष्टा थे। भावार्थ की दृष्टि से सप्तऋषि पद के अनेक अर्थ भाष्यकारों ने किये हैं जिनमें से प्रमुख अर्थों को शोध-पत्र का विषय बनाया गया है। वे इस प्रकार हैं।

1. वेदार्थ-द्रष्टा, तपोनिष्ठ, ब्रह्मज्ञ अर्थ में
2. ज्ञानेन्द्रियों के अर्थ में
3. तारामण्डल अथवा नक्षत्रमण्डल अर्थ में

वेदार्थ-द्रष्टा, तपोनिष्ठ, ब्रह्मज्ञ अर्थ में- विश्वामित्र, जमदग्नि आदि जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है ये सात ऋषि वेदार्थ-द्रष्टा के नाम से प्रसिद्ध हैं। अथर्ववेद में सर्वप्रथम 'सप्तऋषियो' पद चतुर्थ काण्ड में आया है।

यो वेदानुहो दोहानत्सप्तानुपदस्वतः।

प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः।<sup>22</sup>

भावार्थ- जो अनडुह के कभी क्षीण न होने वाले सात दोहों को जानता है, वह प्रजा और उत्तम लोक को प्राप्त होता है। सप्त ऋषि अनडुह के उन सात दाहों को जानते हैं। (इसीलिए उन्हें सुप्रजा और उत्तम लोक प्राप्त है) अनडुह परमपिता के अतिरिक्त कोई दूसरा हो नहीं सकता क्योंकि अनडुहान ने पृथिवी, अन्तरिक्ष और छः दिशाओं को धारण किया हुआ है। पय, पर्जन्य, मरुत् आदि उस अनडुह के सात दोहे हैं। सप्त ऋषि अनडुह के विज्ञान (सृष्टि-विज्ञान) को जानते हैं। अतः स्पष्ट है कि परमात्मा की सृष्टि और उसकी वेद-विद्या के सूक्ष्म-द्रष्टा ही सप्त ऋषि हैं क्योंकि ऋषि वेदविद्या के सूक्ष्म-द्रष्टा, रक्षक तथा प्रकाशक हैं।

एक आख्यान द्रष्टव्य है-

सोदकामत् सा सप्तऋषीनामगच्छत्.....तपश्चाधोक।<sup>23</sup>

तद् ब्रह्म च तपश्च सप्त ऋषय उप जीवन्ति.....य एव वेद।<sup>24</sup>

अर्थात् वह विराट उठी, सप्त ऋषियों के पास गई.....।

तथा उस ब्रह्म और तप के आश्रय पर सप्त ऋषि अपना जीवन चलाते हैं। जो इस सत्य से अवगत हो जाता है वह ब्रह्मवर्चस्वी होकर जीवन निर्वाह करने वाला हो जाता है।

सप्तऋषीन् अभ्यावर्ते ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम्।<sup>25</sup>

अर्थात् मैं सात ऋषियों के अनुकूल आचरण करता हूँ। यहाँ सप्त ऋषीन् से अभिप्राय वेदार्थ-द्रष्टा सात ऋषियों से ही है क्योंकि विजिगीषु तथा उन्नति का अभिलाषी तीन चेतन सत्ताओं (ब्रह्म, ब्राह्मण और ऋषि) के अनुकूल वर्तता (आचरण करता) है।

यस्यां पूर्वं भूतकृत ऋषयो गा उदांमृचुः।  
सप्त सत्त्रेण वेधसी यज्ञेन तपसा सह।<sup>26</sup>

अर्थात् इस भूमि पर सात ऋषियों ने यज्ञ, सत्र और तप के सहित वेद वाणियों का स्तवन किया।

अथर्ववेद के निम्न मन्त्रांशों में सप्त ऋषयः पद वेदार्थ-द्रष्टा महर्षियों का ग्राहक है।

ब्रह्मप्रजा पतिर्धाता लोका वेदाः सप्त ऋषयोऽग्रयः।<sup>27</sup>

तथा

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः।<sup>28</sup>

ज्ञानेन्द्रियों के अर्थ में-

मेमं प्राणो हासीन्मा अपनोऽवहाय परा गात्।

सप्तर्षिभ्य एनं परिददामि त एनं स्वस्ति जरसे वहन्तु।<sup>29</sup>

भावार्थ- इसको प्राण न छोड़े, अपान इसे त्याग कर दूर न जावे।

मैं इसे सप्तर्षियों के लिए देता हूँ वे इसे जरावस्था तक सुखपूर्वक ले चलें। प्राण और अपान ठीक रहने से ही इन्द्रियाँ उत्तम अवस्था में रहती हैं। अतः यहाँ इन्द्रियों अर्थ ही ग्राह्य है। यद्यपि अथर्ववेद में प्राण और अपान भी संख्या में सात है जो बिल्कुल अलग रूप में विद्यमान है।

सप्तप्राणाः सप्तपानाः सप्तव्यानाः।<sup>30</sup>

सायणभाष्य में पाठ है- अत्र ऋषि शब्देन प्राणा उच्यन्ते सप्तसंख्याकेभ्यः प्राणेभ्यः।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार भी-

सप्त वै शीर्षण्याः प्राणाः।

अथर्ववेद के पन्द्रहवें काण्ड के 16वें 17वें सूक्त में देखें।

अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा, पवमान, आपः, पशवः और प्रजा ये सात प्राण हैं।

पौर्णमासी, अष्टका, अमावस्या, श्रद्धा, दीक्षा, यज्ञ और दक्षिणा ये सात अपान हैं।

भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौः, नक्षत्र, आर्तव और संवत्सर ये सात व्यान हैं।

तारामण्डल अथवा नक्षत्रमण्डल अर्थ में-

सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु।<sup>31</sup>

अर्थात् सप्तऋषियों से हमें अभय प्राप्त हो।

अथर्ववेद के 11वें, 15वें, तथा 19वें काण्ड में सप्त ऋषियो पद तारामण्डल अर्थ में ग्राह्य है।

सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्व मन्थन्तु प्रजया सहेह।<sup>32</sup>

सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रथिं सर्वं वीरं नियच्छ।<sup>33</sup>

अदितेर्हस्तां सुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृपवम्।<sup>34</sup>

सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम्।<sup>35</sup>

उक्त सभी मन्त्रांशों में प्रयुक्त सप्तऋषि पद सम्पूर्ण मन्त्रार्थ पर विचार करने पर तारामण्डल अर्थ देता है।

अथर्ववेद के 15वें काण्ड के अधोलिखित मन्त्रांशों का अर्थ भी तारामण्डल अथवा नक्षत्र मण्डल ग्राह्य है।

तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलनम्।<sup>36</sup>  
श्यैतायं च वै स नीधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च.....ब्रात्यमुपवदति।<sup>37</sup>  
श्यैतस्य च वै स नीधसस्य च सप्तर्षीणां च.....दिशि।<sup>38</sup>  
सप्तर्षिभिर्हुते आहुतमन्नादी कृत्वा।<sup>39</sup>

उन्नीसवें काण्ड में तारामण्डल अर्थ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र अधिलिखित हैं।

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु।<sup>40</sup>  
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु।<sup>41</sup>

सप्तर्षेभ्यः स्वाहा।<sup>42</sup> ये सात इन्द्रियों वा सात गोलक स्तुति योग्य बतलाए गये हैं तथा इनका महत्व भी बतलाया गया है।<sup>43</sup>

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के 8/9/26 में परमेश्वर के अर्थ में तथा 10/8/9 व 8/9/7 में एक पृथक अर्थ में प्रयुक्त हैं।

उदाहरण दृष्टव्य हैं—  
तिर्यग्बिलश्चमस.....।<sup>44</sup>

तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतोबभूवुः।।

अर्थात् सात ऋषि साथ-साथ बैठे हैं।

8/9/7 में छः ऋषियों द्वारा कश्यप ऋषि से प्रश्न किया गया है वे पारस्परिक शंका समाधान करते हैं।

यह मात्र एक छोटा सा प्रयास है। विस्तारभय से पूरे मंत्र उद्धृत न करके केवल मंत्रांश दिये गये हैं। अथर्ववेद में सप्तऋषि पद किसी भी अर्थ में प्रयुक्त हो परन्तु है बहुत महत्वपूर्ण क्योंकि—

सप्तऋषियों के उपदेश अखिल विश्व के लिए ग्राह्य और कल्याणकारी हैं। तपसा ये निषेदुः भूतकृत (यथार्थ किया करने वाले), तपसोभिजात, सत्यधर्मा, आदि विशेषण निश्चय ही ऋषियों की उत्कृष्टता के प्रमाण हैं। बिना तप के कोई भी ऋषि पद को प्राप्त नहीं कर सकता। तपोनिष्ठ आप्तपुरुष जो बोलते हैं, सत्य ही बोलते हैं इसलिए उनकी वाणी समाज के लिए प्रमाण हो जाती है। ब्रह्म और तप में विशिष्ट पुरुष ही सप्तऋषयः पद से अभिहित हैं। ऋषियों द्वारा वेद का प्रकाश युगों से होता आया है।

यज्ञेन वाचः पदवीयमान्यं तामन्वविन्दन्नुषिषु प्रविष्टाम्।<sup>45</sup>

स्मृति के अनुसार भी—

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः।

शर्वयन्ते प्रसूताना तान्धेभ्यो ददात्यजः।।

अर्थात् ऋषियों के नाम और वेदों में जो दृष्टियाँ हैं वही प्रलय के अन्त में उत्पन्न हुए ऋषियों को ब्रह्मा देता है।

निरुक्त आदि ग्रन्थों अनुसार भी ईश्वरपरायण, शुद्धात्मा, विशाल हृदय ऋषियों के निर्मल हृदयों में तपोवल से धर्म अर्थ विषयों को जो प्रतिभान् (साक्षात् दर्शन) होता है वही आर्ष ज्ञान है। जिसे उन दृष्टाओं ने अपनी भाषा में जिन वचनों द्वारा प्रकाशित किया वही वेद है।

लोक-कल्याण की भावना से आप्तकाम और सत्यदर्शी ऋषियों ने मनुष्यों में भी एक सामुदायिक कल्याण की भावना उत्पन्न करने का व्रत लिया। इसके लिए उन्हें बड़े कष्ट सहने पड़े, तपस्याएँ करनी पड़ी सर्वलोकहित के लिए यह आवश्यक है कि वैयक्तिक शक्ति (बल व ओज) से ऊपर उत्कृष्ट शक्ति व्यक्तियों के सम्मुख हो। यद्यपि क्षुद्र मानसिकता, संकीर्णताव स्वार्थपूर्ति आदि से ग्रस्त मानव में इस भावना का विकास सरल नहीं था तथापि ऋषियों ने अपना व्रत पूर्ण किया। वर्तमान में लोककल्याण की भावना का हास दृष्टिगोचर हो रहा है परन्तु वेदों के अध्ययन, पठन, पाठन, श्रवण, मनन, चर्चाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों से पुनः वह भावना विकसित हो उठेगी।

### सन्दर्भ

1. आचार्य सायण- तैत्तिरीय भाष्यभूमिका
2. मनुस्मृति- 2/13
3. मनुस्मृति- 12/94
4. वैदिक साहित्य और संस्कृति-बलदेव उपाध्याय वाराणसी पृ0 5
5. मुखपाठ से अभिप्राय सम्भवतः वाचन मात्र से है।
6. एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यक्ज्ञातः स्वर्गलोके च कामधुग् भवति।
7. निर्वचनमूलक, व्युत्पन्न, उपचारपरक (मूल)
8. ऋग्वेद- 10/8/82 निरुक्त- 10/26
9. लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, आसमानी, बैंगनी
10. यजुर्वेद 34/55
11. संस्कृत हिन्दी कोश-वामन शिवराम आष्टे
12. बौ0 श्रौ0 54/12
13. 'सुप्तिडन्तं पदम्' पाणिनि 1/4/14 अर्थ की दृष्टि से शब्द के दो भेद- एकार्थवाची, अनेकार्थवाची शब्द पद बनकर ही अर्थबोधक होता है।
14. ऋग्वेद- 1/109/2
15. ऋग्वेद -10/88/15
16. शतपथ-गोपथ
17. अथर्ववेद- 10/8/9
18. अथर्ववेद- 8/9/7
19. अथर्ववेद- 15/2/22,23,24

20. सत्वांशैः पञ्चभिरस्तेषां क्रमादीन्द्रियपञ्चकम् । श्रोत्रत्वगक्षिरसनघ्राणाख्यमुपजायते ।।
21. बुद्धीन्द्रियाणि तेषां पञ्च विशेषाविशेषविषयाणि । अविशेष (सूक्ष्म) सांख्यकारिका 34 वी०
22. अथर्ववेद- 4/11/9
23. अथर्ववेद- 8/10/4
24. अथर्ववेद- 8/10/13
25. अथर्ववेद- 10/5/39
26. अथर्ववेद- 12/1/39
27. अथर्ववेद- 19/9/12
28. अथर्ववेद- 19/9/13
29. अथर्ववेद- 7/53/4
30. अथर्ववेद- 15/15/2
31. अथर्ववेद- 6/40/1
32. अथर्ववेद- 11/1/1
33. अथर्ववेद- 11/1/3
34. अथर्ववेद- 11/1/24
35. अथर्ववेद- 11/6/11
36. अथर्ववेद- 15/2/22
37. अथर्ववेद- 15/2/23
38. अथर्ववेद- 15/2/24
39. अथर्ववेद- 15/14/17
40. अथर्ववेद- 19/17/7
41. अथर्ववेद- 19/18/7
42. अथर्ववेद- 19/23/4
43. अथर्ववेद- 10/2/6
44. अथर्ववेद- 10/8/9
45. ऋग्वेद- 10/71/3

## उपनिषत्सु पर्यावरणस्य स्वरूपं संरक्षणोपायाश्च

हीरालालदाशः

परि आङ् इत्युपसर्गाद्वयपूर्वकं "वृञ्" धातोः ल्युट् प्रत्यये पर्यावरणम् इति शब्दस्य निष्पत्तिर्जायते। अस्माकं परितः यानि यानि जलवायुवृक्षादीनि सन्ति तानि पर्यावरणशब्देनाभिधीयन्ते। वैदिककालादारभ्य अद्यावधि विविधकाव्येषु पर्यावरणस्य महत्त्वं तत्संरक्षणोपायाश्च निर्दिष्टास्सन्ति। वेदे या वायुदेवता वर्तते सा विश्वभेषजरूपेण निरूपिता। सा वायुदेवता दूषितमपि वायुं परिष्करणं कृत्वा शुद्धं करोति । शोधपत्रेऽस्मिन् अयमेव विषयः सविस्तरेण प्रोच्यते।

पर्यावरणमस्माकं जीवनस्य मौलिभूतं तत्त्वं वर्तते। वेदेष्वपि पर्यावरणविषयकं वर्णनं समुपलभ्यते सुतराम्। प्रसङ्गेऽस्मिन् उक्तं यथा ऋग्वेदे -

आ वात वहि भेषजं वि आत वाहि यद्रपः ।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ।।<sup>१</sup>

वैदिकवाङ्मये उपनिषत्ग्रन्थेषु च पर्यावरणविषये पर्यावरणस्य संरक्षणविषये च प्रतिपदं सुचर्चितम् अनुभूयते । यजुर्वेदे वृक्षारोपणं, वैदिककृषिपरम्परायाः अनुकरणं, तुलसीपर्कटीवृक्षाणां च महत्त्वनिषये निरूपणं वर्तते । प्रकृतेः (पर्यावरणस्य) संरक्षणेन संवर्धनेन च "पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्" इति पक्षः फलयुक्तो भवति। अथर्ववेदे वर्णितः "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"<sup>२</sup> इत्यनेनापि परोक्षरूपेण पर्यावरणस्य तात्पर्यं परिलक्ष्यते। पर्यावरणस्य सङ्केतं विधाय महत्त्वञ्च निरूप्य विष्णुपुराणे उक्तं यत्

दशकूपसमो वापी दशवापीसमो हृदः ।

दशहदसमः पुत्रः दशपुत्रसमो द्रुमः ॥

### ईशावास्योपनिषदि

उपनिषदिद्यं शुक्रयजुर्वेदस्य काण्वशाखीयसंहितायाः चत्वारिंशत्तमो अध्यायो भवति । सर्वास्वपि उपनिषत्सु इयं सर्वप्रथमा इति ज्ञायते । अस्यामुपनिषदि केषुचित् मन्त्रेषु पर्यावरणस्य सङ्केतो लभ्यते । तत्र प्रथमाध्याये चतुर्थे मन्त्रे वायुजलयोः वैशिष्ट्यं सूचितम् । उक्ञ्च एकस्मिन् मन्त्रे वायुः एकः तथा देवविशेषो शक्तिरूपश्च भवति येन जलवृष्टिः, प्राणिनां प्राणधारणादिकं कर्म च सम्भवति । सा वायुरूपा अचिन्त्यशक्तिः परमात्मनः शक्तेः अंशरूपं भवति । तस्य सहयोगं विना प्राणिजगत् नैव सम्भवति । उक्तं यथा ईशावास्योपनिषदि

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनहेवा आपुवन् पूर्वमर्षत् ।

तद्भावतोऽन्यानन्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥<sup>१</sup>

भौतिकजगतः तथा च विज्ञानस्य उन्नतये पर्यावरणस्य असन्तुलनमेव यज्जातं तेन प्राणिजगतः सङ्कटो आपतति । उपनिषत्सु पर्यावरणसंरक्षणोपायान्निर्दिष्टाः । भारतीयदर्शनेषु उपनिषदां ज्ञानधारया नास्तिकोऽपि आस्तिको भविष्यतीति वर्णितम् । उक्तं यथा तत्र-

सर्वमावृत्य तिष्ठति विश्वस्यैकं परिवेष्टिताम् ॥<sup>२</sup> ✕

स भूमिं विश्वतो वृत्वाअत्यतिष्ठद्वशांगुलम् ॥<sup>३</sup>

पृथिव्याः माहात्म्यं मनसि निधाय यजुर्वेदे एकस्मिन् मन्त्रे आदिष्टं यत् पृथिवीं दृढीं कुरु । अपि च पृथिव्याः हिंसा येन केनापि प्रकारेण नैव कर्तव्या । तथाहि

पृथिवीं दृह पृथिवीं मा हिंसाः ॥<sup>४</sup>

सर्वेषामपि धर्माणां मूलं पर्यावरणेन प्रारभ्यते । येन मैत्री, सहिष्णुता, क्षमा, आर्जव, सौहार्द, जीवदया, अहिंसा, राष्ट्रप्रेम तथा आदर्शजीवनशैल्याः वर्धनं भवति । पर्यावरणं तथा प्राकृतिकसंसाधनानां संरक्षणं विधाय अस्माभिः सह-अस्तित्वस्य अनुभवं कुर्यात् । सन्दर्भेऽस्मिन् बृहदारण्योपनिषदि उक्तं यथा-

यथा वृक्षो वनस्पतिस्तथैव पुरुषोऽमृषा ।

तस्य लोमानि पर्णानि त्वगस्योत्पाटिका वहिः ॥<sup>५</sup>

वृक्षाणां त्वगेव रुधिरं भवति । तस्य छेदनेन रक्तमायाति । वृक्षाणामपि जीवनं अवश्यं सम्भवतीति प्रतिपादयन् बृहदारण्यकोपनिषदि उक्तं यथा-

त्वच एवास्य रुधिरं प्ररूयन्दि त्वच उत्पटः ।

तस्मात्तदातृष्णात् प्रैति रसो वृक्षादिवाहतात् ॥

मांसान्यस्य शकराणि किनाट् स्नाव तत् स्थिरम् ।

अस्थीन्यन्तरतो दारूणि मज्जा मज्जोपमा कृषा ॥<sup>६</sup>

अत एव वृक्षाणां कदापि छेदनं नैव कुर्यादिति उपनिषदीयं सूचयति ।

छान्दोग्योपनिषदि निरूपितमस्ति यत् यदि वृक्षस्य एकां शाखां त्यज्यते तर्हि सा शाखा शुष्का भवति । एवमेव यदि अपरां शाखां त्यजति जीवः तर्हि साऽपि शाखा शुष्यति । यदि तृतीयां शाखां त्यजति तर्हि तृतीयाशाखापि शुष्का भवति । एवं च यदि संपूर्णं वृक्षं त्यजति तर्हि समग्रोऽपि वृक्षो शुष्को भवति । प्रसङ्गेऽस्मिन् उक्तं यथा-

अस्य यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्ति द्वितीयां जहाव्यथ सा ।

शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहति सर्वः शुष्यति ॥

मानवसमाजः स्वस्वार्थसिद्धये गृहनिर्माणाय अन्येषु बहुषु कार्येषु च वृक्षाणां छेदनं विदधाति । येन पर्यावरणमपि मालिन्यं भवति । उपनीषदीयशिक्षाः अस्मान् पर्यावरणसंरक्षणस्य भारं स्थापयति । रूद्रहृदयोपनिषदि वृक्षान् रुद्ररूपेण लताश्च उमारूपेण परिकल्पितः । येन वृक्षान् परमपुरुषस्तथा लताः परमशक्तिरूपेण प्रतिष्ठापितं दृश्यते । तथाहि -

**रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्मै नमोनमः ॥**

नैकेषु वेदेषु यज्ञेन पर्यावरणसंरक्षणं भविष्यतीति प्रतिपादितम् । तत्र गीतोपनिषदि निरूपितं वर्तते यत् वेदपुरुषेण परंब्रह्मणा जगत्सृष्टेः प्रारम्भे यज्ञेनैव पर्जन्यः, पर्जन्येन अन्नम्, अन्नेन च प्रजानां सृष्टिर्भवतीति । प्रसङ्गेऽस्मिन् उक्तं यथा गीतोपनिषदि -

**अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यादित्यमुपतिष्ठते ।**

**आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ इति**

वेदेषु उपनिषत्सु पुराणेषु रामायणे महाभारते नैकेषु काव्येषु च पर्यावरणस्योपरि तत्संरक्षणस्योपरि च बहुन्युदाहरणानि द्रष्टुं शक्यन्ते । बृहदारण्यकोपनिषदि स्पष्टरूपेण सर्वेषां पदार्थानं स्रष्टा जलमेव इत्युक्तम् भवति । तथा हि -

**"आपो एवेदमग्र आसुः ता आपः सत्यमसृजन्त ।**

**सत्यं ब्रह्म ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापतिर्देवान् ॥"**

उपनिषत्सु न केवलं बृहदारण्यकोपनिषदि अपि तु अन्यासु उपनिषत्स्वपि पर्यावरणस्य स्वरूपं संरक्षणं, यज्ञादीनामयोजनविषये सुस्पष्टं निर्दिष्टम् ।

कठोपनिषदि यज्ञेनैव पर्यावरणस्य संरक्षणं भवितुमर्हति इत्येव प्रतिपादियुक्तम् - यमराजः यज्ञाग्नेः वैशिष्ट्यं प्रतिपादयितुमेव उक्तवान् - "यः पुरुषः अग्निविज्ञानम्, अध्ययनं तथा अनुष्ठानेषु प्रवृत्तो भवति सः बुद्धौ स्थितस्य सदसद्विवेकस्य ज्ञानाग्निं प्रज्वालितुं शक्नोति, तथा मृत्युभयादपि मुक्तो भवति । एवञ्च रागः, द्वेषः, अधर्मः, अज्ञानादिषु मृत्युबन्धनेषु मुक्तिं प्राप्य स्वर्गलोके स्वस्थानं परिकल्पयति । यज्ञेन पर्यावरणसंरक्षणस्य तदेव रहस्यं कठोपनिषदि उक्तम् । तथा हि -

**त्रिणाचिकेतन्नयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् ।**

**स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥"**

कठोपनिषदि परंब्रह्मणः वायोश्च वैशिष्ट्यं सूचयन् तत्र परोक्षरूपेण वायोः प्रदूषणं कदापि नैव कर्तव्यमिति आदिष्टम् । स च वायुः (पर्यावरणस्य) एकमंशरूपं भवति । यः वायुः समग्रे ब्रह्माण्डे प्रविष्टः नैकरूपेण प्रतिरूपो बभूव । उक्तं यथा कठोपनिषदि प्रथमेऽध्याये द्वितीयवल्यां दशमश्लोके

**वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।**

**एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥"**

प्रश्नोपनिषदि पिप्पलादभार्गवयोः परस्परं प्रश्नकरणे पर्यावरणस्य स्वरूपं तथा च आकाश-वायु-अग्नि-जलादीनां महत्त्वं पिप्पलादेन भार्गवं प्रति उक्तं वर्तते । तथाहि निश्चयेन सः प्रसिद्धः आकाशः देवविशेषोऽस्ति । तथा च वायुः, अग्निः, आपः, पृथिवी, वाक्, चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः एते सर्वेऽपि देवस्वरूपाः भवन्ति । तेषां वायु-आकाश-अग्नि-जलादीनां संरक्षणमेव मानवानां परमं कर्तव्यमिति प्रश्नोपनिषदि सङ्केतितं वर्तते । उक्तं यथा तत्रोपनिषदि -

तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायुरगिरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेताणमवष्टभ्य विधारयामः ।<sup>१३</sup>

मुण्डकोपनिषदि परंब्रह्मणः जगत्सृष्टिप्रक्रियायां पर्यावरणसंरक्षणेन कथं प्राणिनः सम्भवन्तीति विषयमपि परोक्षरूपेण निर्दिष्टमेव । पर्यावरणस्य मालिन्ये दूषिते वा जगदेव विनश्यतीति नास्ति सन्देहलेशोऽपि । तत्रोपनिषदि उक्तं यत् परंब्रह्मणा पुरुषोत्तमेनैव सर्वप्रथमं यस्य अचिन्त्यशक्तिस्वरूपस्य अग्रितत्त्वस्य उत्पादनं कारितं तस्य अग्नेः समिधरूपं (ईन्धनस्वरूपम्) सूर्यं स्थापितम् । अर्थात् यः सूर्यस्य बिम्बरूपेण प्रज्वलति । अग्निना चन्द्रमा उत्पद्यते । चन्द्रमसा सूर्यरश्मिषु सूक्ष्मरूपेण स्थितस्य जलस्य शीतलताकारणात् मेघस्योत्पत्तिर्जायते । मेघद्वारा वृष्टिः, वृष्टिद्वारा ओषधय उत्पद्यन्ते । तेषामोषधीनां भक्षणेनोत्पन्नवीर्येण पुरुषः स्वजातिस्त्रीषु सिञ्चति । तेन संन्तानोत्पत्तिः चराचरप्राणिनामाविर्भावश्च भवति । उक्तं यथा मुण्डकोपनिषदि -

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात्पर्जन्यः ओषधयः पृथिव्याम् ।

पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां वह्नीः प्रजाः पुरुषान् सम्प्रसूताः ।।<sup>१४</sup>

एवमेव अन्येषु उपनिषद्ग्रन्थेष्वपि पर्यावरणसंरक्षणोपायाः सुनिर्दिष्टाः सुचर्चिताश्च सन्तीति ज्ञायते । तासामुपनिषदाम् अध्ययनेनैव अस्माभिः ज्ञातुं शक्यते यत् पर्यावरणसंरक्षणस्य का आवश्यकता ? तस्याभावे का वा हानिरिति ?

**उपसंहारः**

संस्कृतवाङ्मये यद्यपि वैदिककालात् प्रभृतिः नैकेषु काव्येषु पर्यावरणसंरक्षणोपायाः वर्णितास्सन्ति । तथापि यदि सूक्ष्मातिसूक्ष्मं दृष्टिपातं उपनिषदामुपरि विधीयते तेन ज्ञातुं शक्यते यत् सर्वास्वपि उपनिषत्सु पर्यावरणस्य स्वरूपं तस्य संरक्षणोपायाश्च विचारिताः सन्ति । यदि

सम्प्रति मानवसमाजः पर्यावरणसंरक्षणस्योपरि समालोचनां नैव विधास्यति तर्हि आयाति कश्चन समयः यदा मानवाः प्राणिजगतश्च अवश्यं विनाशमेष्यन्ति ।

सन्दर्भाः

१. ऋ.वे. १०.१३६.३

२. अथर्व. - १२.१.१२

३. ईशावा. - मंत्रः ४, पृ. ४

४. श्वेताश्व. - ४.४४

५. श्वेताश्व. - ३.१४

६. यजु. - १३.८

७. बृहदा. - ३.१

८. बृहदा. - ३.२-३

९. बृहदा. - ३.५.५

१०. कठो. - १.१.१८

११. कठो. - १.२.१०

१२. प्रश्नो. द्वितीयप्रश्नः मन्त्रः - २ पृ - १६७

१३. मुण्डको. - २.१.२

**सङ्केताक्षरसूची**

अथर्व. - अथर्ववेदः

ऋ.वे. - ऋग्वेदः

ईशावा. - ईशावास्योपनिषद्

श्वेताश्व.-श्वेताश्वतरोपनिषद्

यजु. - यजुर्वेदः

बृहदा. - बृहदारण्यकोपनिषद्

कठो. - कठोपनिषद्

प्रश्नो. - प्रश्नोपनिषद्

मुण्डको. - मुण्डकोपनिषद्

### सन्दर्भग्रन्थसूची

१. संस्कृत वाङ्मय में पर्यावरण- डा.शङ्कर लाल शास्त्री. हंसा प्रकाशन.जयपुर २००८
२. ईशादि नौ उपनिषद्- हरिकृष्णदास गोयन्दका.गीताप्रेस गोरखपुर. २०१०
३. उपनिषद् वाङ्मय विविध आयाम.डा. वेदवती वैदिक.नाग प्रकाशक.१९९७

### साङ्ख्यदर्शान्तर्गतानि शैक्षिकतत्त्वानि

सागरिकानन्द

शिक्ष विद्योपपादने इत्यस्मात् धातोः शिक्षा इति शब्दः निष्पद्यते या मानवस्य सर्वाङ्गीणविकासं करोति। एषा शिक्षा शिक्षणप्रक्रिया च प्राचीनकालादेव मानवं संस्कारयति। प्राचीनभारतस्य शिक्षाम् अन्वेषयामश्चेत् प्रत्येकस्मिन् भारतीयदर्शने शैक्षिकतत्त्वानि उपलभ्यन्ते येषामाधारेण न केवलं तात्कालिकाः जनाः अपितु समाजोऽपि संस्कारमयः सञ्जातः। भारतीयदर्शनेषु महत्त्वपूर्णं दर्शनं भवति सांख्यदर्शनम्। अस्मिन् दर्शने प्रकृतिः, पुरुषः, महत्, अहङ्कारादीनां वर्णनावसरे विविधानि शैक्षिकतत्त्वानि विचारितानि वर्तन्ते। तानि एव तत्त्वानि आधारीकृत्य शोधपत्रमिदं प्रस्तूयते।

भारतीयदर्शनेषु साङ्ख्यदर्शनस्य एकं विशिष्टं स्थानं वर्तते। 'सम्' इत्युपसर्गपूर्वकं 'ख्याडम्' इत्यस्मात् धातोः साङ्ख्यमिति पदं निष्पद्यते यस्यार्थः भवति सम्यक् ज्ञानं सम्यक् विचारः वा। साङ्ख्यदर्शनस्य प्रणेता कपिलमुनिः। अनीश्वरवादीदर्शनं, द्वैतदर्शनम्, अनेकात्मवादीदर्शनम्, एकात्मवादीदर्शनं, सत्कार्यवादीदर्शनम् इति अस्य बहूनि नामानि वर्तन्ते।

दर्शनेऽस्मिन् मुख्यतया पुरुषः, प्रकृतिः, महत् (बुद्धिः), अहङ्कारः, पञ्चकर्मन्द्रियाणि, पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, मनः, पञ्चमहाभूतानि, पञ्चतन्मात्राणि इत्यादीनां तत्त्वानां विस्तृतं ज्ञानमुपलभ्यते। किञ्च आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविकादीनां त्रिविधदुःखानां निवारणम्, उपरि प्रतिपादितानां पञ्चविंशतितत्त्वानां ज्ञानं, कार्यकारणभावरूपेण तत्त्वानां वर्गीकरणं, सत्कार्यवादसिद्धान्तेन वैज्ञानिकसिद्धान्तप्रतिपादनं, प्रकृतेः ब्रह्माण्डस्य उत्पत्तिविषयकं ज्ञानं, सत्त्व-रजः-तमः इत्यादीनां गुणत्रयाणां विवेचनं, मनोवैज्ञानिकप्रक्रियात्वेन विकासप्रक्रियायाः स्वरूपप्रतिपादनं, ज्ञानाज्ञानयोः स्वरूपस्पष्टीकरणम्, अनेकात्मवादपुरुषस्य संस्थापनम् इति एतस्य दर्शनस्य नैकानि वैशिष्ट्यानि वर्तन्ते। परन्तु अत्र मया शैक्षिकचिन्तनदृष्ट्या केवलं शैक्षिकवैशिष्ट्यानि एव प्रतिपादितानि विद्यन्ते। लघुशोधपत्रेऽस्मिन् मुख्यतया साङ्ख्यदर्शनानुसारं शिक्षा, शिक्षाया उद्देश्यानि, पाठ्यचर्या, ज्ञानार्जनविधयः, अनुशासनम्, शिक्षकशिक्षार्थिसम्बन्धः, विद्यालयः, आधुनिकशिक्षायां योगदानम् इत्येते विषयाः प्रस्तूयन्ते।

### साङ्ख्यदर्शनानुसारं शिक्षा-

पुरुषस्य आत्मनश्च बोधः साङ्ख्यदर्शने भवति। एषैव आत्मबोधः भवति शिक्षा। आत्मबोधार्थं बुद्धि-अहङ्कार-मनःप्रभृतीनां ज्ञानमनिवार्यम्। मनोवैज्ञानिकदृष्ट्या एतेषां तत्त्वानां ज्ञानात्मकं बोधात्मकञ्च तथ्योपस्थापनं शिक्षा। पुनश्च एतद् दर्शनं कथयति यत् सत्त्व-रजः-तमःप्रभृतीनां त्रयाणां गुणानां सन्निधानेन मनसः संस्कृतिकरणप्रक्रिया एव शिक्षा।<sup>१</sup>

### शिक्षाया उद्देश्यानि-

साङ्ख्यदर्शने पारमार्थिकमुद्देश्यं लौकिकमुद्देश्यमिति शिक्षायाः उद्देश्यद्वयं<sup>२</sup> प्रतिपादितं विद्यते। आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकादीनां त्रिविधानां दुःखानां निवारणपूर्वकं धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्वर्गाणां प्राप्तिः पारमार्थिकमुद्देश्यं तथा च ज्ञानेन्द्रिय-कर्मन्द्रिय-पञ्चतन्मात्राणां ज्ञानपुरस्सरं व्यक्तिव्यसंरचनात्मकं सिद्धान्तम् उपस्थाप्य बालकानां शारीरिकविकाससम्पादनं, मानसिकविकाससम्पादनं, ज्ञानेन्द्रियाणां कर्मन्द्रियाणां च विकासः लौकिकमुद्देश्यं भवति।

**पाठ्यचर्या-**

साङ्ख्यदर्शनं प्रकृतेः महत्त्वं स्वीकरोति। अतोऽत्र पाठ्यचर्यापि प्रकृतिपुरुषसम्बद्धा वर्तते। प्रकृतिपुरुषसम्बद्धं ज्ञानम् इदानीं विज्ञानमिति अभिधीयते। अतः पाठ्यचर्याऽपि तादृशी वैज्ञानिकी युगोपयोगी च भवेत्। भौतिक-रासायनिक-जीवविज्ञान-अन्तरीक्षविज्ञानसम्बद्धाः विषया अत्र निरूपिताः। मनः, बुद्धिः, अहङ्कारः, गुणाः, इन्द्रियाणि, विविधाः क्रियाश्चेत्यादीनां नैकेषां मनोवैज्ञानिकविषयाणां स्थानमत्र अन्तर्भवति।<sup>३</sup> सांसारिकभोगार्थं योगक्रियाब्रह्मचर्यादीनां शिक्षापि पाठ्यक्रमे सन्निविष्टा स्यात्। अवस्थानुक्रमेण एते विषयाः अत्र पाठनीयाः।

१. शैशवावस्थायाम्- इन्द्रियानुभवक्रियाः अर्थात् मृत्तिकायाः, जलस्य, प्रकाशस्य, वायोः, उन्मुक्तपर्यावरणस्य तथा रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द-ध्वनि-उच्चारणादीनां ज्ञानम्।
२. बाल्यावस्थायाम्- स्मरणयोग्या विषयाः तथा बौद्धिकविकाससम्बद्धा विषयाः अर्थात् भाषा-गणित-सामाजिक-विज्ञानादीनां ज्ञानम्।
३. किशोरावस्थायाम्- विवेचनात्मकविषयाः भवेयुः येन मौलिकतायाः नूतनदृष्टिकोणस्य च विकासः सम्भवेत्।

**ज्ञानार्जनविधयः-**

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्.....<sup>४</sup> इति सूक्त्यनुसारं प्रत्यक्षः, अनुमानम्, शब्दः, उपमानम्, अर्थापत्तिः, उपलब्धिः इत्यादयः प्रमुखाः ज्ञानार्जनविधयः साङ्ख्यदर्शने स्पष्टीकृताः। उपर्युक्तानामेतेषां विधीनानुसारं केचन शिक्षणविधयः उल्लिख्यन्ते। यथा-

१. सूत्रविधिः सूक्ष्मकथनविधिः वा- यथा संस्कृतव्याकरणशिक्षणे सूत्रकारेण नियमाः, सिद्धान्ताश्च अधीयन्ते तद्वत् अत्रापि सूक्ष्मतत्त्वानाम् उपस्थापनाय सूत्रविधिः स्वीक्रियते।
२. प्रत्यक्षविधिः- प्रत्यक्षविधिः अत्र द्विधा भवति। सविकल्पकं निर्विकल्पकञ्चेति। सविकल्पकविधौ व्याख्या-विवेचन-विश्लेषणक्रियाः अन्तर्भवन्ति। निर्विकल्पके च अनभिव्यक्तानाम् अनुभूतीनाञ्च ज्ञानम् इन्द्रियैः सम्पाद्यते।
३. अनुमानविधिः- पूर्वज्ञानस्याधारेण स्थितेः परिकल्पनमेव अनुमानम्। यदा मेघसन्दर्शनात् वृष्टिः भविष्यति इति ज्ञानम् अनुमानम्। गणित-इतिहास-समाजशास्त्रादीनामध्ययने विधिरयम् उपकरोति।
४. उपदेशात्मकविधिः- अत्रापि राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात्<sup>५</sup> इति न्यायेन शिक्षणे उपदेशविधिः स्वीक्रियते।

५. ऊहः तथा तर्कविधिः- युक्तिसम्मतया व्याख्या तर्कविधिरिति कथ्यते। असद्वक्त्रणात् उपादानग्रहणात् इत्यत्र तर्कस्य ऊहापोहस्य च प्राधान्यं वर्तते। इत्यतः साङ्ख्यदर्शने विधिरयम् उपयुज्यते।

**अनुशासनम्-**

अनुशासनं जीवनस्य परमं भूषणम् इति बहुधा बहु वर्णितं विद्यते। साङ्ख्यदर्शनम् आध्यात्मिकं लौकिकञ्च अनुशासनं मानवजीवनस्य उन्नतये प्रतिपादयति। पुनश्चात्र अनुशासनम् आन्तरिकमनुशासनं बाह्यानुशासनमिति द्विधा सम्पादयितुं शक्यते। धारणा, सङ्कल्पः, वृत्तिः, निरोधः, स्थिरबुद्धिः, भावनायाः नियन्त्रणम् इत्यादीनि तत्त्वानि आन्तरिकानुशासने अन्तर्भवन्ति। तथा च यम-नियम-आसन-प्राणायामप्रभृतयः बाह्य तथा शारीरिकानुशासने अन्तर्भवन्ति। अत्र अनुशासनस्य क्रमः एवं सम्पाद्यते। यथा आदौ शारीरिकानुशासनं ततः मानसिकानुशासनं तत्पश्चात् आत्मिकानुशासनम्।

**शिक्षकशिक्षार्थिसम्बन्धः-**

साङ्ख्यदर्शनं ज्ञान-विद्या-शिक्षादीनां साधनानामुपरि बलं ददाति। तदर्थं शिक्षार्थी एकः साधकः भवति। शिक्षार्थी ऊहः, शब्दः, अध्ययनं, सुहृत्पाप्तिः, दानम्, अष्टप्रकारकसिद्धिं सम्पादयेत् इत्यत्र प्रतिपादितमस्ति। नम्रता, गुरुगृहे वासः, अध्ययनम्, उपासना, परम्परापालनं तस्य वैशिष्ट्यम्। शिक्षकोऽपि ब्रह्मवादी, वैरागी, दानशीलः, अध्ययनशीलः, आत्मज्ञानयुक्तः, गृहविहीनः, परगृहसुखी, बहुशास्त्रज्ञः, आत्मज्ञानसाधकश्च भवेत्।

**विद्यालयः-**

प्रकृतिः, अरण्यं, नदीतटम् इत्यादिषु स्थलेषु यत्र कुत्रापि शिक्षा प्रदातुं शक्यते इति साङ्ख्यदर्शनस्य अभिप्रायः। परन्तु मुख्यतया दर्शनमेतद् कथयति यत् जीवितप्राणिनां संसारे स्थित्वा ज्ञानम् अर्जयितुं शक्यते। जीवितप्राणिनां संसारः जीवनदायिनी संस्था वर्तते।

**आधुनिकशिक्षायां योगदानम्-**

उपर्युक्तानां विश्लेषणानाम् आधारेण आधुनिकदर्शनस्य किं योगदानं वर्तते इत्यस्मिन् सन्दर्भे कथ्यते यत् साङ्ख्यदर्शनम्-

-बालकेषु शारीरिकं तथा मानसिकविकासं सम्पादयति।

-मनोवैज्ञानिकः तथा बालविकाससात्मकसिद्धान्तः अनुश्रीयते।

-मनः, बुद्धिः, अहंकारः इत्यादीनां स्वरूपं प्रतिपाद्य बालकानां हृदयेषु सद्भावान्, सद्चिचारान् च सञ्चारयति।



- ज्ञानेन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणाञ्च विकासाय प्रेरयति।
- अवस्थानुसारं छात्राणां कृते पाठ्यचर्यामपि निर्धारयति।
- विविधानां शिक्षणविधीनां ज्ञानं कारयति।
- आन्तरिकानुशासनेन सह शारीरिकमपि अनुशासनं सम्पादयति।

साङ्ख्यदर्शनस्य एतादृशानि शैक्षिकवैशिष्ट्यानि अवलोक्य मया केचन प्रस्तावा उपस्थाप्यन्ते।

यथा -

१. बालकानां शारीरिक तथा मानसिकविकासाय शिक्षाव्यवस्था करणीया।
२. शिक्षायां मनोवैज्ञानिक तथा बालकेन्द्रितसिद्धान्तः अनुसरणीयः।
३. पाठ्यक्रमे मनः, बुद्धिः, अहंकारः, गुणाः इत्यादीनां तत्त्वानां पाठाः स्युः।
४. ज्ञानेन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणाञ्च विकासाय क्रियाः सम्पादनीयाः।
५. शारीरिकानुशासनेन आन्तरिकमनुशासनमपि सम्भवति। अतः योगक्रियाः सम्पादनीयाः।

### सन्दर्भः

१. सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः।  
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।।  
अविवेक्यादेः सिद्धिः त्रैगुण्यात् तदविपर्ययाभावात्।  
कारणगुणात्मकत्वात् कार्यस्याव्यक्तमपि सिद्धम्।। ( सांख्यकारिका-१३-१४ )
२. दुःखत्रयाभिघाताज् जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।  
दृष्टे साऽपार्था चेनैकान्ताऽत्यन्ततोऽभावात्।।  
दृष्टवदानुश्रविकः स ह्यविशुद्धिक्षयाऽतिशययुक्तः।  
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।। (सांख्यकारिका- १, २ )
३. प्रकृतेर्महांस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।  
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि.....इत्यादयः (सांख्यकारिका- २२-२७)
४. दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।  
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमाणसिद्धिः प्रमाणाद्धिः।। (सांख्यकारिका- ४)
५. सांख्यप्रवचनभाष्यम्-५.१

### सन्दर्भग्रन्थसूची-

१. ओङ्के. डॉ. लक्ष्मीलाल, शिक्षा का दार्शनिक पृष्ठभूमि, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, २००८।
२. शर्मा प्रो. रजनी, पाण्डेय डॉ. सत्यप्रकाश, शिक्षा एवं भारतीय समाज, शिक्षा प्रकाशन, जयपुर, २००६।
३. पारीक प्रो. मथुरेश्वर, शर्मा प्रो. (श्रीमती) रजनी, उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा, शिक्षा प्रकाशन, जयपुर, २००६।
४. यादव डॉ. प्रतिभा, उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, साहित्य प्रकाशन, आगरा, २००५।
५. त्रिपाठी डॉ. श्रीकृष्णमणि, सांख्यकारिका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, २००८।
६. शास्त्री डॉ. गजानन, वैद्योपनामकोमुसलगाँवकारः, सांख्यदर्शनम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी द्वितीय, वि.सं. २०५७।
७. झा डॉ. रामनाथ, सांख्यदर्शन, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, २००८।

## सांख्यदर्शनानुसारं कर्मदेहयोः परिचयविमर्शः

देवाशीषपाणिग्रही

सांख्यदर्शनम् आस्तिकदर्शनमित्युच्यते तत्र कर्मविषये देहविषये च महती चर्चा उपस्थापिता वर्तते। कर्मणः स्वरूपं तत्र किमप्यनतिरसाधारणं वैशिष्ट्यं विभर्त्ति। तमेवाधारीकृत्य शोधप्रबन्धेऽस्मिन् विमर्शः प्रस्तूयते।

कपिलमहर्षिणा प्रणीतं दर्शनं कापिलमित्युच्यते। एतदेव दर्शनमन्वर्थतया सांख्यं संगीर्यते, सम्यक् ख्यानं संख्या सा अस्ति अस्मिन्निति सांख्यम्। यद्वा संख्या पदार्थानां गणना तत्रधानं दर्शनं सांख्यम्। अस्मिन् दर्शने यद्यपि प्रमुखतया प्रकृतिपुरुषविषयः उपस्थापितः तथापि विषयान्ते कर्मणः स्वरूपं दीयते –

न कर्मण उपादानत्वाऽयोगात् ।।<sup>21</sup>

सर्वेषां कर्मणां रहस्यं कर्मैव भवति। अस्मात् कारणात् सर्वं विघटते। मर्त्यलोके जनाः कं विषयं इच्छन्ति तस्मिन् विषये कथ्यते। जनानां कृते न केवलं प्राचीनकाले अपि तु सर्वस्मिन्नपि काले एते विषयाः अपेक्षिताः सन्ति। रथयानेन गमनं, नृत्यं, गीतं, मिष्टान्नादिभोजनं तथा स्त्रीणाम् उपभोग इत्यादि। परन्तु विषयानुभवकाले जनाः न चिन्तयन्ति यत् एतैः उपभोगैः किं प्रयोजनम्? अपितु एतेषां विषयाणां प्राप्त्यर्थं कर्मानुष्ठानं च ते कुर्वन्ति। स्मृत्यादिशास्त्रेषु तानि कर्माणि प्रेरयन्ति। इदं स्पष्टं यदस्माकं पूर्वकृतकर्मानुसारं प्रकृतिः परिणामपूर्वकं भोगसाधनं सम्पादयति। एतेषु साधनेषु मध्ये शरीरः अन्यतमः। कर्मानुसारं शरीरं प्राप्यते। पापकर्मणा नरकादिभोगरूपं अधोयोनिः प्राप्यते तथा पुण्यकर्मणा देवयोनिः प्राप्यते इति श्लोकेनोच्यते –

शुभैराप्नोति देवत्वं निषिद्धैर्नारकीं गतिम्।

उभाभ्यां पुण्यापापाभ्यां मानुष्यं लभतेऽवशः ।।<sup>22</sup>

यथैव कर्मणा जन्म अवाप्यते तथैव लोकाः वा प्राप्यन्ते। तथा च –

<sup>21</sup> सां.सू.- 1/81

<sup>22</sup> नै.सि.-1/33

धर्मेण गमनोर्ध्वं गमनं भवत्यधर्मेण।

ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः ।।<sup>23</sup>

एतत्कारिकानुसारं मानवः पुण्यकर्मणा ब्रह्मलोकं प्रजापत्यलोकं च गच्छति। एतद्विपरीतकर्मणा सुतलवितलपातालादिषु लोकेषु स्थानं लभते। तत्र गमनात्परं तेषु लोकेषु भिन्नं शरीरं लभते। तदनुसारेण संसारे फलरूपिशरीरं त्रिविधं भवति। गीतानुसारम् –

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।

भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिना क्वचित् ।।<sup>24</sup>

अस्मिन् श्लोके त्रिविधं शरीरं सूचयति भगवान् कृष्णः। अनिष्टशरीररूपेण नरकः तथा पशुपक्ष्यादियोनयः मन्यन्ते तथा च इष्टशरीररूपेण देवयोनिर्गृह्यते एवं मिश्रशरीररूपेण मनुष्यशरीरं मन्यते। धर्माधर्मादिकर्मणा मिश्ररूपिणी मनुष्ययोनिः लभ्यते। प्रकृतेः कर्मणा एते च विकाराः सर्वत्र गृह्यन्ते। तथा च सूत्रेणोक्तम् –

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः ।।<sup>25</sup>

अनेन सांख्यसूत्रेणापि एतादृशः कर्मदेहः विभज्यते। जीवः स्वकर्मणा त्रिविधं देहं लभते। कर्मदेहः उपभोगदेहः तथा उभयदेहः इति च। अयं तु देहः सर्वेषां प्राणिनां कृते समानः स्यात्। परं तु जीवस्य देहप्राप्तिमात्रेणैव धर्माधर्मादिकर्मणार्थं योग्यता न आयाति। अपितु तन्निमित्तं किञ्चित् विशिष्टताम् अपेक्षते। तदुक्तम् –

न देहमात्रेणैव कर्माधिकारित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः ।।<sup>26</sup>

जीवः त्रिविधगुणकारणात् कदाचित् पापम् आचरति कदाचिच्च पुण्यम्। गीतायां च –

काम एषः क्रोधः एषः रजोगुणसमुद्भवम्।

स महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणाम् ।।<sup>27</sup>

<sup>23</sup> सां. का.- 44

<sup>24</sup> भ.गी.-18/12

<sup>25</sup> सां.सू.- 5/25

<sup>26</sup> सां.सू.-5/124

<sup>27</sup> भ.गी.-3/37

अस्मिन् श्लोके रजोगुणस्योत्पादकरूपेण जायमानकामकारणात् जीवः अनिच्छासत्त्वेऽपि पापमाचरति । तस्मात् कारणात् शनैः तामसजन्त्यात् मोहात् पापेन संश्लिष्टाः जीवाः अधर्मकर्मणा लिप्ताः भवन्ति । अमुं तत्त्वं ज्ञात्वैव ऋषयः दृढव्रताः भवन्ति स्म ।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।  
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥<sup>28</sup>

ते ज्ञानिनो ऋषयः एतं विषयं ज्ञात्वा शुद्धान्तःकरणाः सन्तः रागादिदोषरहितं पुण्यकर्म कुर्वन्ति । तदर्थमिदमुच्यते –

गतासूनागतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥<sup>29</sup>

तस्य कारणमपि उच्यते भगवता कृष्णेन –

न त्वेवाहं जातु नाशं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।  
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥<sup>30</sup>

अतो वयं सार्वकालिकाः भवामः । केवलं शरीरभिन्नत्वेन इति कृत्वा ते ऋषयः शास्त्रविहितं कर्म कुर्वन्ति स्म अन्तःकरणशुद्ध्यर्थम् । अस्मिन्नेव विषये शास्त्रेऽपि कथ्यते –

तस्यैव दुःखतप्तस्य कथञ्चित् पुण्यशीलनात् ।  
नित्यहाक्षालिताधियो वैराग्यं जायते हृदि ॥<sup>31</sup>

एतेन कर्मसाधनेन साधकानां मनसि अहङ्कारः न जायते । इति –

यत्कर्मको हि यो भावो नाऽसौ तत्कर्तृको यतः ।  
घटप्रत्ययवत्तस्मान्नाहं स्याद् द्रष्टुकर्मकः ॥<sup>32</sup>

तादृशस्य योग्यताविशिष्टस्य योगिनां शरीरं सांख्यानुसारं कर्मदेहः उच्यते । अस्य विपरीतया ये कर्मानुष्ठानादि समाप्य शरीरं प्राप्नुवन्ति तेषां शरीरं भोगदेहः इति कथ्यते । तादृशः इन्द्रादिदेवताः केवलं पूर्वकृतकर्मफलनिमित्तं शरीरं लभन्ते । तादृशस्य देहस्य भोगदेहः इति सांख्याशास्त्रे व्यवहारः । एतस्मिन्नेव विषये पुनः उच्यते –

<sup>28</sup> भ.गी. -7/28

<sup>29</sup> भ.गी. - 2/11

<sup>30</sup> भ.गी. -2/12

<sup>31</sup> नै.सि. -1/45

<sup>32</sup> नै.सि. -2/24

शुद्ध्यमानं तु तच्चित्तमीश्वरार्पितकर्मभिः ।

वैराग्यं ब्रह्मलोकादौ व्यनक्त्यनुनिर्मलम् ॥<sup>33</sup>

एते देवगणाः अर्थात् भोगदेहधारिणः द्युलोके तथा ब्रह्मलोके च वसन्ति । तेषां सिद्ध्यनुसारं विविधान् लोकान् प्राप्नुवन्ति । इति

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् । तदोत्तमविदां लोकानमलान् प्रतिपद्यते ॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्घिषु जायते । तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥<sup>34</sup>

श्लोकाभ्यामुभाभ्यां सूच्यते यत् जीवः स्वकीयकर्मानुसारं देहं प्राप्नोति । पापकर्मणा पशुपक्षिकीटादिमूढयोनिस्तथा पुण्यकर्मणा देवलोकाद्यूर्ध्वलोकाः भुञ्ज्येते। एवं च “उभयदेहश्च राजर्षिणा” इति वृत्त्यनुसारं नरशरीरं एतादृशं स्यात् यस्मिन् जीवः पूर्वकृतकर्मफलं भुङ्क्ते । तथा च भाविजन्मनिमित्तं कर्माणि करोति । तदर्थमुच्यते – नरत्वं दुर्लभं लोके ।

#### सन्दर्भग्रन्थसूची

1. सांख्यदर्शनम् - डा रामशंकर भट्टाचार्यः, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली- 1994.
2. सांख्यतत्त्वकौमुदी - डा ओमप्रकाश पाण्डेयः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी- 1981.
3. नैष्कर्म्यसिद्धिः – पं प्रेमवल्लभत्रिपाठीशास्त्रि, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली -2007.
4. श्रीमद्भगवद्गीता - श्रीहरिकृष्णदास गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर- 2012.
5. गीतातत्त्वचिन्तनम् (भाग 1-2) - स्वामी आत्मानन्द अद्वैत आश्रम, कोलकाता- 2008.
6. सांख्य तत्त्व मनोरमा- डॉ. दीनानाथ पाण्डेय, मनोरमा प्रकाशन, वाराणसी- 1991.
7. हिन्दी – सांख्यदर्शन- पं.सीताराम शास्त्रि, पि मगनि रमा एस्, धर्म प्रेस, मेरठ-1998

<sup>33</sup> नै.सि. -1/47

<sup>34</sup> भ.गी. -14/14-15

## शृङ्खलाप्रभागः

## कालिदासकविता विजयते

राधावल्लभशर्मा

कालिदासकवितारसामृतम् ।  
निखिलदेववाणी हि निकषम् ।  
आप्लावयति जनान् ।  
समेधयति मनोभावान् ।  
संचारयति संवेगान् ।  
प्रतिष्ठापयति सम्बन्धान् ।  
दृढयति व्यवहारान् ।  
वर्द्धयति विचारान् ।  
दूरीकरोति विकारान् ।  
विकासयति विवेकान् ।  
साधयति साधकान् ।  
प्रस्तवीति नूतनविषयान् ।  
प्रेरयति सकलान् ।  
योजयति योजकान् ।  
परामृशति सन्दर्भान् ।  
संकेतयति विभावान् ।  
समर्थयति संस्कारान् ।  
विकीर्यति ज्ञानरसान् ।  
समग्रयति कुटुम्बान् ।  
कालिदासकवितारसामृतम् ।  
निखिलदेववाणी हि निकषम् ।

## रङ्गकर्मणो गुरुः वशिष्ठः परब्रह्मणि विलीनः

नौन्हालगौतमः

ग्वालियरवास्तव्यः प्रख्यातो रङ्गकर्मी डॉ. कमलवाशिष्ठः 28.06.2015 तमे दिनाङ्के रविवसरे दिवङ्गतः। अस्य जन्म मध्यप्रदेशस्य महूनगरे (इन्दौरनिकटे) 27 सितम्बर 1938 तिथौ अभवत्। अयं महाभागः जीवाजी-विश्वविद्यालय-ग्वालियरात् 'नाटक एवं रंगमंच' विषये पीएच.डी.-उपाधिं प्राप्तवान् । स विगत 61 वर्षेभ्यो रङ्गमञ्चक्षेत्रे सक्रिय आसीत्। स हिन्दी-मराठी-संस्कृत-सिन्धीत्यादिभाषाणां 150 तः अधिकानां नाटकानां मञ्चनं, निर्देशनं च कृतवान्। अनेन निर्देशिताः प्रमुखाः ख्यातकृतयः सन्ति- सखाराम बाइण्डर, अन्धायुग, जसमा-ओडन, देहान्तर, एक कण्ठ विषपायी, साँच कहुँ, घासीराम कोतवाल (हिन्दी-मराठीभाषयोः), मालतीमाधवम्, उत्तररामचरितम्, विक्रमोर्वशीयम्, भगवदञ्जुकीयम्, कुन्दमाला (संस्कृते) अग्नि, हयवदन, नागमण्डल चेत्यादयः। एतेषां नाटकानां प्रस्तुतयो ग्वालियर, भोपाल, उज्जैन, सागर इन्दौर, बालाघाट, दमोह, टीकमगढ़, मुरैना आदि (म.प्र.), मुम्बई (महाराष्ट्रम्) रायपुर, बिलासपुर, रायपुर, दिल्ली, देहरादून, रामनगर, मुरादाबाद, जयपुर प्रभृतिषु स्थानेषु कृताः। अस्य चत्वारि मौलिकनाटकानि - कहानी धोधीबाई की, चन्द्रमा होते ही हैं कलंकी, प्रेत बोलते हैं और कहत गधा सुनो हो साधो (हिन्दीभाषायाम्) सन्ति। सः अन्यभाषाणां नाटकानां हिन्द्यां रूपान्तरणं कृतवान्। सः मुम्बई, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, रामपुर, मेहसाना, जयपुर, डोगरगढ़, ग्वालियर, शिवपुरी, अम्बाह, सागर-नगरेषु नाट्यकार्यशालाः कृतवान्। सः पीटर ब्रुक (फ्रांस), यूजीन ओ बाबा (हॉलेण्ड), जॉन मार्टिन (लन्दन) बृजमोहन शाह प्रभृतिभिः सह रङ्गकार्यशालासु, कॉमनवेल्थ थियेटर लैबोरेट्री इत्यस्यां सहभागितां कृतवान्। तस्य नटरंग, नाट्यम्, छायानट प्रभृतिषु नैकासु प्रतिष्ठितपत्रिकासु लेखाः प्रकाशिताः। स नाटकस्य प्रथम चक्रधर फैलोशिप, म.प्र. शासनेन (1984), सीनियर फैलोशिप, केन्द्रीय संस्कृति विभाग, भारत शासनेन (2005), महाराष्ट्र राज्यस्य नाट्य द्वारा श्रेष्ठ निर्देशक पुरस्कारेण, आचार्य सम्मान - मधुवन भोपाल, मास्टर फिदा हुसैन सम्मान, उ.प्र. भाव भावेश्वर सम्मान, सम्मान - वरुमाल गुजरात, अ. भा. संस्कार भारती सम्मान दिल्ली प्रभृतिभिः सम्मानैः सम्मानितः । रङ्गकर्मणे समर्पितायाऽस्मै नाट्यगुरवे सादरं श्रद्धाञ्जलिं समर्पयन्ति संस्कृतपरिवारः नाट्यरसिकाश्च।

## मोबाईल ( एन्ड्रायड् एप् ) मध्ये व्याकरणशास्त्रम्

देवदत्तसरोदे

अयि भो !मान्याः! संस्कृतशास्त्रसमारोधानतत्परा ; ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च इति साङ्गवेदाध्ययनं ब्राह्मणानाम् अहेतुको धर्मो विद्यते । इमं धर्मम् आचरितुं संरक्षितुं नैके आचार्याः स्वीयं जीवनं पणीकृत्य शास्त्राणि रक्षयामासुः एतस्मात् कारणादेव अतिक्रान्तेषु नैकेषु वत्सरेषु अद्यापि अजस्रा काचित् शास्त्रशिक्षणसंरक्षणपरम्परा जीवत्येषा आस्माकीना । साम्प्रतिके काले संगणकयुगेऽस्मिन् सर्वं जगदिदं प्रविधिमयं सञ्जातम् । सर्वं ज्ञानं, विज्ञानं यन्त्रारूढं विद्यते । पाणिपल्लवालङ्करणभूतमोबाईलयन्त्रमुवेन विश्वं हस्तामलकीभूतं, किं बहुना शास्त्राप्यपि मोबाईलमध्ये निहितानि सन्ति । शास्त्राणि तु बहूनि सन्ति परं तत्रापि प्रधानं षडङ्गेषु व्याकरणं , प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति इत्युक्तदिशा व्याकरणशास्त्रस्य महत्त्वमनितरसाधारणं वरीवर्ति किञ्च उपासनीयं यत्नेन व्याकरणं महत् । प्रदीपभूतं सर्वासौ विद्यानां यदवस्थितम् ॥

इति निगदितं तस्मात् व्याकरणं तु कृत्स्नमध्येतव्यमिति अस्मदीयः प्रथमः कल्पः स्यात् । परं कष्टं खलु व्याकरणम् इति श्रूयते एतत् कष्टमपनेतुं छात्रसुहृद्भूत्वा आयुष्मता सुजनह्वाख्येन व्याकरणाध्ययनायोपकारीभूतानि अभिनवानि कानिचन ( एन्ड्रायड् एप् ) साधनानि निर्मितानि । तत्र प्रथमं तावत् -

1. पाणिनि अष्टाध्यायी : - (डॉनलोड कर्तुं लिंक भवति <https://play.google.com/store/apps/details?id=org.srujanjha.paniniashatadhyaya&hl=en>)

अस्मिन् अष्टाध्यायीसूत्रक्रमेण अध्यायं, पादं, सूत्रसङ्ख्यां scrool कृत्वा, सूत्रं, प्रथमावृत्तिं (पदच्छेदं, समासं, सूत्रार्थम् उदाहरणानि) द्रष्टुं शक्नुमः , अपि च लघुसिद्धान्तकौमुदी, बालमनोरमां, काशिकावृत्तिम् एतस्याः न्यासः इति टीकां , तत्त्वबोधिनीमपि सुकरतया विलोकयितुं प्रभवामः । व्याकरणाध्ययने, सन्दर्भान्वेषणे एतन्महदुपकरोति ।

1. सिद्धान्तकौमुदी : - (डॉनलोड कर्तुं लिंक भवति <https://play.google.com/store/apps/details?id=org.srujanjha.siddhantakaumudi&hl=en>) अस्मिन् साधने वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदीक्रमेण सूत्राणां प्रथमावृत्तिं (पदच्छेदं, समासं, सूत्रार्थम् उदाहरणानि) द्रष्टुं शक्नुमः, अपि च लघुसिद्धान्तकौमुदी, बालमनोरमां, काशिकावृत्तिम् एतस्याः न्यासः इति टीकां , तत्त्वबोधिनीमपि सुकरतया विलोकयितुं प्रभवामः । एतदपि व्याकरणपिपठिषूणां कृते , सन्दर्भान्वेषणे च महते उपकाराय कल्पते । एतत् साधनद्वयं On line (उपलब्धे अन्तर्जाले ) मध्ये कार्यं करोति ।

3. **अष्टाध्यायी-सूत्रानुक्रमणिका** :- (डॉनलोड कर्तुं लिंक भवति <https://play.google.com/store/apps/details?id=org.srujanjha.ashtadhyayivarnanukramanika&hl=en>) अस्मिन् साधने अष्टाध्यायीसूत्राणाम् अकारादिक्रमेण पदच्छेदं, समासं, सूत्रार्थम् उदाहरणानि द्रष्टुं शक्नुमः, अपि च लघुसिद्धान्तकौमुदीं, बालमनोरमां, काशिकावृत्तिम् एतस्याः न्यासः इति टीकां, तत्त्वबोधिनीमपि सुकरतया विलोकयितुं प्रभवामः। व्याकरणाध्ययने, सन्दर्भान्वेषणे एतन्महदुपकरोति। अस्य वैशिष्ट्यं अविद्यमानेषु अन्तर्जाले अर्थात् Off line मध्येपि इदं कार्यं करोति अनेन सर्वजनसुलभं सार्वकालिकं सार्वभौमं चैतत् संवृत्तम्।

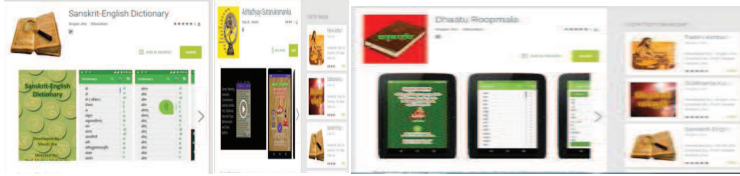
4. **संस्कृत इङ्ग्लिश डिक्शनरी (शब्दकोशः)** : - (डॉनलोड कर्तुं लिंक भवति- <https://play.google.com/store/apps/details?id=org.shruti.sanskritdictionary&hl=en>) अस्मिन् साधने अकारादिक्रमेण scrool विधाय संस्कृतपदानाम् आङ्ग्ल अर्थः द्रष्टुं शक्यते। अस्य निर्माणं प्रो. मदन मोहन झा महोदयस्य पुत्री श्रुतिज्ञा अकार्षीत्। एतद् संस्कृतशब्दानाम् आङ्ग्लार्थान्वेषणे चारु उपकरोति।

५. **धातुरूपमाला** :- (डॉनलोड कर्तुं लिंक भवति <https://play.google.com/store/apps/details?id=org.srujanjha.dhatuvrttis&hl=enhttps://play.google.com/store/apps/details?id=org.srujanjha.dhatuvrttis&hl=en>) अस्मिन् साधने पाणिनीयधातुपाठे विद्यमानानाम् उपद्विसहस्रधातूनां धात्वर्थः, गणः, सेडनिट्, परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, उभयपदम्, दशसु लकारेषु कर्तृकर्मभाववाच्येषु धातुरूपाणि, क्षीरतरङ्गिणी, माधवीया धातुवृत्तिः अनयोः विशिष्टसन्दर्भाः अत्र निहिताः सन्ति। एते सर्वे विषयाः यःकोपि लीलया प्रेक्षितुं प्रभवति।

इमानि पञ्च एन्ड्रायड् एप् साधनानि यः कोपि Google store तः निश्च्युल्लम् आहर्तुं प्रभवति। इमानि एन्ड्रायड् एप् साधनानि प्रो. मदनमोहनझावर्याणां निर्देशने तेषां तनयः श्रीसुजनज्ञा अपि च तनया सुश्री श्रुति झा आभ्यां निर्मितानि सन्ति। अयि भो! संस्कृतानुरागिणः! इमानि साधनानि उपयुज्य व्याकरणशास्त्राध्ययने समुत्सुकाः संभूय तूर्णं व्याकरणशास्त्रम् आस्वाद्य स्वायत्तीकुर्वन्तु।

सर्वेषां डॉनलोड कर्तुं लिंक भवति-

<https://play.google.com/store/search?q=srujan%20jha&c=apps&hl=en>



## ग्रन्थसमीक्षा

भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र –आचार्यसत्यव्रतशास्त्रिप्रणीतसंस्कृतसाहित्यस्य प्रथमा आत्मकथा  
(Rather things destined to happen find ingress everywhere)

राधावल्लभशर्मा

अभिनवसंस्कृतसाहित्यमहोदधिः सर्वाङ्गीरणीयान् विषयान् क्रोडीकृत्येदानीमशेषसंसारमाकर्षयति नितराम्। अस्यामेव परम्परायाम् आत्मकथा इति विषयोपेतः कश्चन अपूर्वः प्रकल्पः अक्षिप्सात् भवतीति कृत्वा तस्या विषये यथामति विविदिषामि।



अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्ये प्राच्यपाश्चात्यविद्यापारङ्गता विविधभाषासंस्कृतिसंवेदितारः शास्त्रपारदृशानो विद्वत्तल्लजा महीयन्तेऽनुदिनम्। तेषु पण्डितपुङ्गवेष्व्वाचार्यसत्यव्रतशास्त्रिमहाशयो बिभर्ति मौलिभूतं स्थानम्। इमे आचार्याः सम्प्रति द्वितीयसंस्कृतायोगस्य आध्यक्ष्यपदं निर्वहन्ति। को वा न जानीयाद् वाग्वैदग्ध्यममीषां शास्त्रसंरक्षणतत्पराणां संस्कृतवृद्धिसन्निहितचेतसां नैकभाषाज्ञानमतिमतां कविपुङ्गवानामाचार्याणाम्। सन्त्येते संस्कृतक्षेत्रे जीवितकिंवदन्त्यः (A Living Legend in the field of Sanskrit )। प्रथमोऽयमाचार्यो यो विदेशेषु संस्कृतस्य ज्ञानवैभवाशिं सातत्येन निष्ठया च ततान। महद्भागधेयमस्माकं यद् विलक्षणविज्ञानसंधारिण इमेऽवस्थायामस्यामपि मेदुरयन्ति काव्यमाधुर्यमस्मत्तदृशानां

मानवानां मनसि। किं वा वक्तव्यमेतेषां विषये – कश्चन श्रूयते आभाणकः – भाविनां महावृक्षाणामारम्भ पत्राणि चिक्कणानि भवन्ति। ( होनहार विरवान के होत चिकने पात ) अथवा (पूत के पग पालने में ही दिख जाते हैं) एभिर्शास्त्रिचरणैस्त्रयस्त्रिंशद् ग्रन्था विरचिताः। ग्रन्थेष्वेतेषु सन्ति केचन ----

1. The Ramayana – A Linguistic Study
2. Discovery of Sanskrit Treasures
3. Kalidas in Modern Sanskrit Literature
4. New Experiments in Kalidas

5. दिने – दिने याति मदीय जीवितम् ( दैनन्दिनी, Diary)
6. Sanskrit writings of European Scholars
7. Introducing Sanskrit Literature
8. Sanskrit Studies: New Perspectives
9. थार्डैशविलासम्
10. चरन् वै मधु विन्दति

भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ( होनी होकर रहती है, होनी को कोई नहीं टाल सकता है।)वर्तते आत्मकथा (Auto-Biography ) एषा। संस्कृतसाहित्येतिहासे प्रथमात्मकथेयमेव। का भवति आत्मकथेति विचारयामो वयम्-स्वकीयजीवनानुभवकथनमेवात्मकथेति वक्तुं शक्यम्। आचार्यराधावल्लभत्रिपाठी बभाषे लक्षणमात्मकथाया अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रे – **जीवनचरितस्यैव प्रकारविशेष आत्मकथा**<sup>35</sup>। जीवनचरितस्य अपरं नाम एवात्मकथा भवतीत्यभिप्रायः। अत्र कविःप्रणेता वा स्वस्य चरितं स्वयमेव वर्णयति। अत्र उत्तमपुरुषप्रयोग आद्यन्तं स्यात्। अहङ्कारः साक्ष्यालङ्कारश्चास्य सौन्दर्यं प्रगुणयतः। सम्प्रति अस्या आत्मकथायाः प्रथमो भागः प्राकाश्यमुपगत इति कृत्वा भागस्यास्य समीक्षणमेव मुख्यं प्रयोजनं नः। वस्तुतःआत्मकथायाः शीर्षको गृहीतो लेखकेन तद् स्मारयति नूनं कालिदासीयोक्तिं शाकुन्तले। अनेन महाकविकालिदासपिपासुरयं लेखक इति द्योत्यते।

आत्मकथा नास्ति आत्मख्यातिविस्तरोऽवसरःकश्चित्। यदनुभूयते,यद् विलोक्यते, जीवने या या घटनाः संजायन्ते, यद् आलोच्यते, यद् विस्फारिक्रियते तत्सर्वमत्र समागच्छति। कथाकारः प्रमुखं पात्रं भवत्यात्मकथायामस्याम्। सर्वमपि तं मूलं मत्वा परिभ्रमति। निखिलमपि घटनाचक्रं तं कथाकारं प्रेरयति, आन्दोलयति, स्मारयति, स्फोटयति स्मृतिगवाक्षैः। अखिलमपि घटनाचक्रं बहुकाले गतेऽपि प्रत्यक्षमिव भातीह। स्वयमेव कथाकारेणाचार्यसत्यव्रतशास्त्रिवर्येण लिखितं पुरोवाचि –

“अत्र कथापात्रमेव कथावाचकः। स कथायाःस्रष्टापि द्रष्टापि वाचकोऽपि। यद्यप्यन्यदीयेयं कथा तथापि तच्छ्रोता वा तद्वाचको वा तथा तां परिगृह्णाति यथा तस्यात्मीयेयमित्यनुभवं जनयति। तदेतत्साधारणीकरणं नाम। एतेनान्यजनस्य जीवने वृत्तं

<sup>35</sup> अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम् पृ. -३१८

स्वजीवने वृत्तमिति श्रोतुर्वा वाचकस्य वाऽनुभवो भवति। तेन च प्रखवति तस्मिन् वाचामगोचरः कश्चनानन्दनिष्पन्दः। कथाकारस्यास्य जीवने राद्धान्तोऽयं नितान्तेन चरितार्थतां गतः। यथा –

अघटितघटितं घटयति सुघटितघटितानि दुर्घटीकुरुते ।  
विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥<sup>36</sup>

अयमेवाधारो वास्तविकजीवनस्य कथाकारस्य। प्रसादगुणगुम्फित, वैदर्भीरितिसमाश्रितेयमात्मकथा प्रवाहपूर्णा, विद्वन्मनोहारिणी, बुधजनमनःप्रसादिनी, रसभावसम्पूरिता, विविधज्ञानविज्ञानकोषव्याकरणसाहित्यादिप्रयोगपेशला, प्रेरणाप्रदायिनी, जीवितानुभवबोधिनी, सुमार्गदर्शिनी चास्मान् प्रेरयति शिक्षयति च कामप्यपूर्वा जीवनपद्धतिम् । अत्रेदं वैशिष्ट्यं यद् विशिष्टव्याकरणप्रयोगा विशिष्टरीत्या सुवावबोधशैल्या च चर्चिताः। कथाकारस्य व्याकरणशास्त्रपाठं शब्दवैदुष्याच्चात्र पदे –पदे दृग्गोचरीभवति । प्रस्तूयन्ते कानिचन तन्निदर्शनानि –

“नत्थूरामशास्त्रिनामधेयो विद्वान् आसीत् कश्चित् । एकदा सायङ्कालसमये मम व्याकरणज्ञानं परीचिक्षिषुर्मांमप्राक्षीत् – कुत्र चडुकर्म्यते? सहसैव मयोक्तं – अत्रैव बभ्रम्यते । किम् ? इति नाटयता तेन पुनःपृष्टम्- मयोक्तम् –अत्रैव दन्द्रम्यते इति<sup>37</sup> । “

अनेन कथाकारस्य व्याकरणशास्त्रज्ञानं सहजैवानुमेतुं शक्यते । कथाकारस्य आङ्ग्लभाषाज्ञानमपि दृश्यताम् – विद्यावारिधेःवाक् परीक्षा आसीत् । तत्र नरेन्द्रनाथचौधरी सदृशा विद्वांसःकुलपतयःआसन् । सर्वेऽपि प्रश्ना आङ्ग्लभाषयैव – कुलपतयः- You have written a Thesis, Tell me what is the Literal meaning of the word Thesis ?

शास्त्रिमाहाभागाः(कथाकारः) –Thesis is the Greek word, S is a Nominative Singular Suffix, Thesei is cognate with the Route धा of Sanskrit. It is a Literal meaning is a New point which is put forward. अर्थात् थीसिस इति ग्रीकभाषायाः शब्दः। अन्तिमःसकारोऽत्र प्रथमाविभक्त्येकवचनप्रत्ययः। थीसिरिति प्रकृतिःसंस्कृतभाषाया घाघातोःसजातीया । अक्षरार्थोऽस्ति उपन्यासः

अध्ययनाध्यापनयोर्विषयेऽपि महती चर्चाऽत्र प्रस्तुता। ब्रूते आत्मकथाकारः(Auto – Biographer)

<sup>36</sup> भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र पृ. ५-८

<sup>37</sup> तत्रैव 39

“अध्यनाध्यापनयोःसहप्रवृत्तिरेव साधीयसी । अतःप्रबन्धरचनायामेव मनो देहि। विरम्यान्वचिन्तनात् । वृत्त्यर्थं नाति चेद्वेति स्मर प्राचां वचः। न तत्केवलं जठरपिठरीपूरणायैव । तां तु काकादिका अपि पिपुरति । यद्यध्यापकः सन् स्वकीयेऽध्ययनकर्मण्येव संस्यसि नाध्यापनाय तन्याय्यं भविष्यति ।”<sup>38</sup>

प्रेरणाभावभरिताः अध्यापककर्तव्ययुक्ता इमे विचाराः। जीवनानुभवस्य इमे विचाराः पथप्रदर्शकाः सन्तः सर्वात्ममाचरितुमस्मान् प्रचोदयन्ति अभिप्रेरयन्ति च किमपि नवीनं कर्तुम् । कथाप्रसङ्गेऽस्मिन् एकः साक्षात्कारसन्दर्भो जगाद इह – “दिल्लीविश्वविद्यालये रीडरपदमुपलक्ष्य आसीत् कश्चन साक्षात्कारः। आसन् तत्र साक्षात्कारग्रहीतारो बहवो विद्वांसः। तेषु कालिशास्त्रिनामधेयः कश्चित् सुधी आसीत् । तेन समासविषयकप्रश्नः समुत्थापितः।

यथा –शास्त्री- समास इत्यस्य कोऽर्थः?

अहम् – समसनं समासः। सम् पूर्वकादसुक्षेपेण इति धातोर्निष्पन्नोऽयं शब्दः।

शास्त्री – अपरःकोऽर्थःशब्दस्यास्य ?

अहम् – संक्षेप इति ।

शास्त्री – किं समासेऽपि संक्षेपार्थो घटते ?

अहम् – अवश्यम्।

शास्त्री- शिवकेशवौ इत्यत्र कःसंक्षेपः?

अहम् –अन्तर्वर्तिन्या विभक्त्योर्एवात्र संक्षेपः। समासात् पूर्वं शिवः केशवः इति द्वे पदे । शिवःइत्यत्रैका विभक्तिःकेशव इत्यत्र चापरा। कृते समासे शिवकेशवौ इत्यत्रैका विभक्तिः।

शास्त्री – परमेकवचनस्थाने द्विवचनं सञ्जातम्, शिवकेशवौ इति । तर्हि कथं संक्षेपः?

अहम् – औ इति विभक्तिप्रत्ययस्त्वेक एव। समासात् पूर्वं द्वौ विभक्त्यौ , शिवःइत्यत्रैका, केशवःइत्यत्रैका । कृते समासे कृत्तद्धितसमासाश्चेति प्रातिप्रादिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तौ औ इत्येक एव विभक्तिप्रत्ययः।

शास्त्री- किं फलं समासस्य ?

अहम् – एकपद्यमैकस्वर्यं चेति ।

समासविषयकोऽयं विषयः सारल्येन सुबोधरीत्या च प्रत्यपादि ।

<sup>38</sup> तत्रैव पृ. ५०



दृश्यतामन्योऽपि प्रसङ्गःसाक्षात्कारस्य –

राघवन् – स्था धातुःपरस्मैपदी वाऽत्मनेपदी वा ?

अहम्-परस्मैपदी

राघवन् – तर्हि कथं संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते य इत्यत्रात्मनेपदम् ।

अहम् –प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्चेति सूत्रेण । कर्णादिषु तिष्ठते इत्यत्र निर्णेतुत्वेनाश्रयतीत्यर्थः ।

राघवन् – भूधातुरात्मनेपदी वा परस्मैपदी वा?

अहम् –सत्तायां परस्मैपदी प्राप्तावात्मनेपदी।अर्थभेदेन पदभेदः।

राघवन् –उपलभ्यत आत्मनेपदिनो वाङ्,मये प्रयोगः?

अहम् –लभ्यत एव ।शिवपुराणगतमेकं प्रयोगं तु स्मराम्येव ।

अन्यत्राप्ययं प्राप्तत्यर्थःस्यादन्यथा कथमाचार्य –

पाणिनिस्तं निरक्षयेत्स्वसूत्रे तदुल्लेखद्वारा ।

धातुपाठेऽस्यानुल्लेखात्प्रतीयते कालान्तरे लुप्तोऽयमिति ।

राघवन् –भवता शिवपुराण एतत्प्रयोगस्य चर्चा कृता ।

उद्धृततां तत्पद्यं चत्रास्य प्रयोगः ।

अहम् –अयमहमुद्धरामि –

भवे भवप्रसादेन भवभक्तो भुवि ध्रुवम् ।

भवानीसहितं भक्त्या परया भवते भवम् ॥

भवभक्तो भवं भवते प्राप्नोतीत्यर्थः।

राघवन् –अहो ! अद्भुतः प्रयोगोऽयम् ।नैर्विधःप्रयोगो मया श्रुतपूर्वः।साधुवादाः।<sup>39</sup>

संस्कृतभाषाया वर्तते वैज्ञानिकत्वमेतादृशं नास्त्यन्यत्र कुत्रापि ।भाषावैज्ञानिकदृष्ट्या विलोक्यतां संस्कृतवाग्वैभवम् –

“विश्वसंस्कृतसम्मेलनमासीत् इटलीदेशे ।मया संस्कृतपर्यायवाचिनःशब्दा विषयोऽयं चितः।ये शब्दाः कोषेषु पर्यायत्वेन निर्दिष्टास्तेष्वप्यस्ति कश्चन सूक्ष्मोऽर्थभेदः।न वस्तुतोऽस्ति तेषां पर्यायता ।न सन्त्याङ्गलभाषायां तादृशौ द्वौ शब्दौ यौ स्यातां पूर्णरूपेण समानार्थकौ (There are no two perfect synonyms in English language) न स्तस्तादृशौ द्वौ शब्दौ संस्कृतभाषायां ययोः पूर्णतया समानार्थकता स्यात् ।तयोरर्थभेदोऽस्त्येव ।स कदाचित्तथा सूक्ष्मो भवति यथा स वाचा

<sup>39</sup> तत्रैव पृ. ८५

वर्णयितुं न शक्यते,तस्यानुभवैकवेद्यत्वात् ।इक्षुक्षीरगुडादीनां माधुर्यस्य महदन्तरं भवति परं यथा केनचिदुक्तं शक्रेणापि तद्वर्णयितुं न शक्यते ।रामायणे नैकशःपर्यायवाचित्वेन स्वीकृताः शब्दाः सहप्रयुक्ताः।यथा – स पपात हतो भूमौ विटपीव महाद्रुमः, तां विनाऽथ विहंगोऽसौ पक्षी प्रणदितस्तदा ,वने वनेचरांश्चान्यान् खेचरांश्च विहंगमान् , विराजयन्ती तं देशं विद्युत्सौदामिनी यथा,रराज राजपुत्री सा विद्युत् सौदामिनी यथा,काञ्चनाभं नभश्चक्रे विद्युत्सौदामिनी यथा इत्यादि ।यदि पर्यायत्वेन स्वीकृताः शब्दा एकमेवार्थं ब्रुवते तर्हि कथं तेषां सहप्रयोगः? सोऽयं सहप्रयोग एव तेषां पर्यायत्वं विरुणद्धि ।एकेन तत्र विशेषणेन भवितव्यमपरेण च विशेष्येण ।विटपी महाद्रुम इत्यत्र विटपीति विशेषणं स्यात् द्रुम इति च विशेष्यम् , विटपाः सन्त्यस्य इति विटपी , तादृशो माहाद्रुमः,विहंगः पक्षी इत्यत्र विहंग इति विशेषणं पक्षीति विशेष्यं विहायसा गच्छन् पक्षी ,खेचरान् विहंगमान् इत्यत्र चो विहंगमशब्द उपर्युद्धते पद्यांशे विशेषणं स एवात्र विशेष्यतां गतः, विद्युत्सौदामिनीत्यत्र सौदामिनीति विशेषणं विद्युदिति च विशेष्यम् । सुदाम्नेविदक् इति पानिनिःसूत्रेणाणं प्रत्ययेन निष्पन्नः सैदामिनीशब्दस्तां विद्युतं द्योतयति या सुदाम्ना एकदिक भवति ,नेयम् सामान्या विद्युदपि तु यथा तिलकटीकाकृता व्याख्यातं स विद्युद् या सुदाम्नि पर्वते भवति ।<sup>40</sup>

श्रीमद्भगवद्गीताविषयकम् व्याख्यानमपि महता ज्ञानेनात्मकथायामस्यां कथाकारः प्रत्यपादि ।

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।

इषुभिः प्रतियोत्सामि पूजार्हावरिसूदन ॥

अत्र प्रतियोत्सामीति पाठः।न तु योत्सामीति पाठः।अत्र कश्चन गूढोऽभिसन्धिः।योत्सामीत्युक्ते युद्धं तेभ्यो दास्यामीत्यर्थः।प्रथमं ते वा मयि प्रहरेयुरहम् वा तेषु ।युद्धकाल उभयमपि सम्भवति ।प्रतियोत्सामीत्युक्ते प्रथमं तेषां मयि प्रहारस्ताद्वारणार्थं मम तेषु प्रहार इत्यर्थःपर्यवस्यति – counterfight इति यदुच्यत आङ्ग्ल्याम् ।

आचार्यद्रोणोऽर्जुने सुतरां स्निह्यति स्म दुर्योधनः।यद्यपि तस्य धनुर्वेदनैपुण्यवशात्स ते पाण्डवान् योधयितुं सेनाप्रमुखत्वे स्थापितस्तथापि तस्य मनसि तं प्रति मन्युरासीदेव ।अतो न कमप्यप्यवसरं स्वकीयमसन्तोषं प्रकटयितुं स त्यजति स्म ।धृष्टद्युम्नेन व्यूढां पाण्डवसेनां द्रोणो दृष्टिगतां करोतुत्विति प्रसंगे स तादृशी शब्दावल्लिं प्रयुङ्क्ते याऽन्यथाऽन्विता सती तत् हृत्स्थं द्वेषभावम् तज्जनितां चावमाननमाविष्करोति –

पर्येतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य! महतीं चमूम् ।

व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥

अत्र सामान्योऽर्थः – हे आचार्य! धीमता तव शिष्येण द्रुपदपुत्रेण व्यूढां पाण्डुपुत्राणामिमां महतीं चमूम् पश्य ।पदानामन्यथायोजनयाऽत्र कश्चिदन्योऽप्यर्थो हेयबुद्धिप्रेरितः समुन्मिषति ,येन विषमेऽपि कुटिलमतिर्दुर्योधन आचार्य

<sup>40</sup> तत्रैव पृ. १३२-३४

वाग्भौषिण्डिन्नवावभासते । तथा हि – हे पाण्डुपुत्राणामचार्य! धीमता तव शिष्येण द्रुपदपुत्रेण व्यूढामिमां महती चम् पश्य । अत्र द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येणेति पदत्रयं सभिप्रायम् । तव शिष्योऽप्यस्माद्विरुद्धमाचरति ध्वनिः । एवं द्रुपदस्य पुत्रोऽसाविति स द्रोणोऽपमानितः । स एव त्वया शिष्यत्वेनाभ्युपेत इति तं प्रति निपुणमधिकेषः ।

यदाऽर्जुनः सेनयोरुभयोर्मध्ये श्रीकृष्णेन स्थाफ्रिते सति स्थितः स्वप्रतिपक्षे स्थितान् गुरुजनान्बन्धुजनांश्चापश्यत्तदा तस्य हृदयं विषाद आक्रामत् । स न चोत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव । तदा गोविन्देन स प्रतिबोधितो यद् धर्म्याद्धि युद्धच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते । दृढमुक्तश्च – तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ततः परं प्रवृत्ता तस्योपदेशवाग्धारा । तमुपदेशं श्रुत्वाऽर्जुनस्य विषादोऽपगतः । स्मृतिश्च तेन लब्धा । तदा स दृढस्वरेणावोचत् – स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव । गीताया प्रारम्भो भवति उत्तिष्ठ इति पदेनोपसंहारश्च भवति स्थितोऽस्मीति पदाभ्याम् । पदत्रयान्तराल एव सर्वाऽपि गीताऽस्ति समाहिता । विषादत्यागो नवस्फूर्तेश्चोन्मेष एव गीतोपदेशः ।<sup>41</sup>

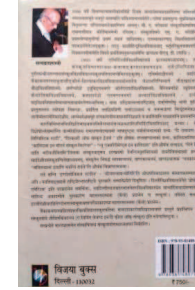
अहो! अपूर्वज्ञानभरितमिदं वचो लेखकस्य । सत्यमुच्यते – प्रतिभा-व्युत्पत्ति-अभ्यासेनैव विद्वत्सं समागच्छतीति । विषयप्रतिपादनशैली तु प्रवाहमयी रुचिरा नवीनतथ्यसमन्विता च विलसन्ती प्रेरयत्यस्मान्नवीनमाचरितुमवश्यमेव । प्रतिपादितविषयस्य विश्लेषणं सर्वथा वैज्ञानिकरीत्या भवेदिति प्रयतते कथाकारो नूनम् ।

आधुनिकसंस्कृतवाङ्मयस्योऽभिनवं किमिति विषमधिकृत्य कथाकारः पेन्सिलवेनियामिश्वविद्यालयप्रवृत्तां घटनां प्रस्तौति ।

“साम्प्रतिके संस्कृतवाङ्मये नवीना विषयाः आगतास्सन्ति यथा – यौतुक-कन्याभ्रूणहत्या – आतडुकादार्थिकाशौचप्रभृतयः । अयमस्ति विशेषः । आधुनिकयुगे पाश्चात्यप्रभावद्वा कालप्रभावद्वा बहु नुल्लमङ्गीकृतं जीवनशैल्यामस्माभिर्भारतीयैः- नुलाः पदार्थाः, नूतनानि यन्त्राणि, नूतनानि सञ्चारसाधनानि, नूला चिकित्सापद्धतिः, नूतनानि शास्त्रप्रबन्धन-वाणिज्यव्यवसाय – धनागारप्रबन्धशास्त्राणि, नूतनानि शस्त्रास्त्राणि च । तदर्थं नूलाः शब्दा अपेक्षिताः । ते नाम भवन्ति कल्पनीयाः संस्कृतरचनाकारेण । तत्र त्रिविधां पद्धतिं स समाश्रयति । प्रथमा पद्धतिः- वैदेशिकभाषायां, भाषासु वा तदर्थं प्रयुज्यमानाऽऽशब्दान्सं संस्कृतप्रबन्धे यथास्वरूपं प्रयुङ्क्ते । तथाहि – अत्र प्लेग उत्पत्त्यते, मदनलालस्तं रिवाल्ह्वरस्य गोलिकानां बलीचकार, कोटादिकमपनीय नागदन्ते स्थापयति, पैण्टे निष्कास्य, चायं साधयति, प्लेटफार्मडिटिकटमध्ये, क्लर्का आगच्छन्ति । द्वितीयापद्धतिः- लोकभाषासु प्रयुज्यमानाऽऽशब्दान् स संस्कृतरूपतामापाद्य व्याहरति । सा संस्कृतरूपता तथा भवति यथा ते शब्दाः स्वरूपतोऽप्यनेकशः पुनरर्थतोऽपि मूलसंस्कृतशब्दवत्प्रतिभासन्ते येन संस्कृतगद्यबन्धे व पद्यबन्धे व ते प्रक्षिप्ता इति प्रतीतिं परिहृत्य संस्कृतमूलत्वात्तद्भ्रूता इति प्रतीतिं जनयन्ति । तथाहि-साबुन इत्यर्थे स्वफेनशब्दः-

<sup>41</sup> तत्रैव पृ. १६२

सुगन्धिस्वफेनेन स्नातव्यम्, मोटरकार इत्यर्थे मरूत्तरशब्दः-चक्षुषि चमकुर्वन्तो मरुत्तराः पैट्रोल इत्यर्थे प्रतैलशब्दः-प्रतैलवाहिनी मरूत्तराः । तृतीया पद्धतिः-वैदेशिकाऽऽशब्दान् मनाक् ध्वनिपरिवर्तनेन स संस्कृतरूपतामापादयति- आङ्ग्लनद्या टेम्स इत्याख्यायाः कृते तमसा शब्दः-तमसाख्या तरङ्गिणी नगरमभितः प्रवहन्ती प्रमोदकारिणि, बाजार इत्यस्य कृते वाणिज्यारशब्दः-वाणिज्यारं प्रति सम्प्रति प्रस्थितोऽस्मि । हारमोनियम कृते हरमनोयमशब्दः-चन्द्रकला हरमनोयमादाय, आफिसर कृतेऽपसरशब्दः-अपसरे लब्धो विजयः, चप्पलकृते चपलोहानहशब्दः-चपलोपानहौ धारयित्वा । चतुर्थी पद्धतिः- हिन्दीशब्दानां तथा संस्कृतरूपतापादानं यथा ते संस्कृतादेवोद्भूता इति प्रतीतिं जनयेयुः । तथाहि – ऊधमी इत्यस्य कृते ऊद्धमशब्दप्रयोगः । उद्धम किमपि कार्यं कुरु, पूजीवादकृते पुञ्जवादशब्दप्रयोगः-तस्य पूजा पुञ्जवादशब्दप्रयोगः-तस्य पूजा पुञ्जवादयुगे प्रवृत्ता, दोगला इत्यस्य कृते द्विगलशब्दप्रयोगः-द्विगलो न समाजे सम्मानभाजनम्, हंसमुख इत्यस्य कृते हंसमुखशब्दप्रयोगः-हंसमुख उद्धवः प्रस्थितः, बडो बडो के इत्यस्य कृते वरान् वरान् इतिशब्दप्रयोगः-वरान् वरान् अपि स निःसत्त्वतां नयति स्म । घडी इत्यस्य कृते घटी-घटिका-शब्दो प्रयोगः । घटीविशेषस्य कृते मणिबन्धघटी, भित्तौ स्थापिताया घटिकाया कृते भित्तिघटिकाशब्दप्रयोगः । पञ्चमी पद्धतिः-अर्थनित्यः परीक्षेतेति दृष्ट्या वैदेशिकानां शब्दानामर्थमनुसन्धाय नूलाशब्दकल्पना- स्टैथिस्कोपकृते-उरश्श्रवयन्त्रशब्दः, नाइट गाऊन कृते नक्ताशुकशब्दः, पैरासाइट कृते परैधितशब्दः, लाइफ इंशुरेंसकृते जीवनाश्वासनशब्दः, इंजिनीयरींगकृते आभियांत्रिकीशब्दः, सर्कसकृते पशुक्रीडाप्रदर्शनशब्दः, आईसक्रीमकृते हिमखण्डिकाशब्दः, जेब इत्यस्य कृते गोह-गुप्तिशब्दौ, चायकृते उष्णजल-उष्णपेय- कषायपेय-कषायपानशब्दाः, तालककृते तालक-लोहसूचिशब्दौ, ट्रेनकृते वाष्पशकटी-धूमशकटी-गन्त्री-शब्दाः ।<sup>42</sup>



अन्तिमे प्रवाहे जीवनसारो ब्रवीति कथाकारो-मया कुत्र कुत्र न गतं, कुत्र कुत्र न भाषितम्, कुत्र कुत्र न वाऽध्यापितम्, कैस्कैर्न वा संगतं, किं किं न वा दृष्टं, कैस्कैर्न वाऽऽलपितम् । विश्वयात्र्यहम् । नाना देशा मया गमिकर्मीकृताः अद्य वर्षीयानहम् संवृत्तः । बहु दृष्टं मया, बहु चानुभूतम् । तस्य सर्वस्य स्मृतिरितिर्मे मनोऽनेकश उद्वेष्टयति । दूरङ्गमं जविष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरिति श्रुत्या कीर्तितं तन्मां स्मृतिमाध्यमेन दूरस्थांस्तान् देशान् पुनरपि प्रापयति । पूर्वदृष्टैर्विद्वद्भिः संगमयति, तैः सम्भाषयति, तत्त्वेहेन मां स्नपयति, मदीयां रिक्ततामपनीय पूर्णतां मय्यादधाति । सत्यमियमात्मकथा सार्थाभिधाना संस्कृतभाषासंवर्धिनी,

<sup>42</sup> तत्रैव पृ. ३०१-०२

जीवनमूल्यसूक्ष्मतत्त्वस्फुटीकरणक्षमा सहृदयहृदयाह्लादिनी, जीवनानुभवप्रदर्शिनी शास्त्रसंवलिता, संस्कृतिज्ञानपरिचायिका,  
विश्वबन्धुत्वावबोधिनी विलसति नः पुरस्तादिति।

अन्ते-

सर्वं स्वाभाविकं प्रोक्तं सत्यव्रतेन मेधया।  
इयमात्मकथा काचिदपूर्वा प्रतिभाति मे ॥  
आनन्दं जनयत्येषा नूनं मानसमन्दिरे।  
संपठ्य भावबोधो हि जायते सुतरां तथा ॥<sup>43</sup>

भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र  
आत्मकथा  
प्रथमो भागः  
सत्यव्रतशास्त्री  
विजया बुक्स, दिल्ली.

- 1 भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र, आत्मकथा, सत्यव्रतशास्त्री, विजया बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015।
- 2 अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, श्रीमद्राधावल्लभप्रणीतम्, सम्पादक- आचार्यरमाकान्तपाण्डेय, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, नूतन संस्करण-2009।

<sup>43</sup> समीक्षकेन विरचितम्

## लेखकानां सूची

1	डा. मनोज श्रीमाल	वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, बलाहरः, हि.प्र.
2	श्रीवैद्यसुब्रह्मण्यः	वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, बलाहरः, हि.प्र.
3	प्रणतिपण्डा	शोधच्छात्रा, संस्कृतविभागः, श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीविश्वमहाविद्यालय, एनाचूर, काञ्चीपुरम्, तमिलनाडु
4	प्रो. पुष्या अवस्थी & सुमन पाण्डेय	आचार्या, संस्कृतविभाग, शोभनसिंहदीना परिसर, कुमाउँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग, शोभनसिंहदीना परिसर, कुमाउँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
5	डा.कृष्णाशर्मा	जयपुरपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, बलाहरः, हि.प्र.
6	डा.मधुकेरभट्टः	वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, बलाहरः, हि.प्र.
7	डा.ललित किशोर शर्मा	
8	डा.हरिनारायणधरद्विवेदी	वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, बलाहरः, हि.प्र.
9	डा.भुवनचन्द्र मठपाल	संस्कृतविभाग, शोभनसिंहदीना परिसर, कुमाउँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
10	डा.सुशान्तहोता	वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, बलाहरः, हि.प्र.
11	डा. गीता शुक्ला	सहाचार्या, संस्कृतविभाग, भगवानदीन आर्यकन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी, उत्तरप्रदेश ।
12	डा.हीरालालदाशः	संस्कृतविभागः, श्रीचन्द्रशेखरेन्द्रसरस्वतीविश्वमहाविद्यालय, एनाचूर, काञ्चीपुरम्, तमिलनाडु
13	डा.सागरिकानन्द	वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, बलाहरः, हि.प्र.
14	देवाशीषपाणिग्रही	शोधच्छात्रः, संस्कृतविभागः, पाण्डिचरी विश्वविद्यालयः, पाण्डिचरी
III		
1	डा.राधावल्लभशर्मा	वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, बलाहरः, हि.प्र.
2	डा.नौनिहालगौतमः	डा.हरिसिंहगौडविश्वविद्यालयः, सागरः, मध्यप्रदेशः
3	डा.देवदत्तसरोद	क.जे. सोमैय्यासंस्कृतविद्यापीठम्, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, विद्याविहारः, मुम्बई
4	डा.राधावल्लभशर्मा	वेदव्यासपरिसरः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, बलाहरः, हि.प्र.



Send your paper



[mail@sarasvatniketanam.org](mailto:mail@sarasvatniketanam.org)

[jahnavisanskritjournal@gmail.com](mailto:jahnavisanskritjournal@gmail.com)